नगरीय समाजशास्त्र

[URBAN SOCIOLOGY]

लेखक

पी. एन. खरे एम. ए., रिसर्च स्कालर

समाजशास्त्र विभाग

महारानी लक्ष्मीबाई आर्ट्स एण्ड कामर्स कॉलेज

ग्वालियर

प्रकाशन - विभाग

गया प्रसाद एण्ड सन्स आगरा

प्रकाशक :

प्रकाशन विभाग
गयाप्रसाद एण्ड संस, आगरा
बाके विलास, सिटी स्टेशन रोड, आगरा

मुख्य विक्रय केन्द्र :

गयाप्रसाद एण्ड सन्स, आगरा
ऑरियन्टल पब्लिशर्स, कानपुर
पॉपुलर बुक डिपो, जयपुर
लॉयल बुक डिपो, गवालियर
कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल
श्री अलमोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा

पुस्तक का मूल्य :

५ रुपए

पुस्तक का संस्करण :

१५ फरवरी, १९६२

मुद्रक :

जगदीशप्रसाद अग्रवाल
एज्यूकेशनल प्रेस, आगरा

आमुख

आज नगरीय समाजशास्त्र की यह पुस्तक विद्यार्थियों को देते हुए मुझे अत्यधिक हर्ष हो रहा है। विक्रम विश्वविद्यालय के बी० ए० फाइनल के विद्यार्थियों के द्वितीय प्रश्नपत्र के लिये हिंदी भाषा में एक भी पुस्तक नहीं है। इस कारण विगत दो-तीन वर्ष तक विद्यार्थियों को काफी कठिनाई हुई। इंदौर तथा गवालियर के समाजशास्त्र के विद्यार्थी मुझे गत दो वर्षो से इस विषय पर हिंदी भाषा में पुस्तक लिखने का आग्रह कर रहे थे, अतः मैंने 'नगरीय समाजशास्त्र' पर हिंदी भाषा में पुस्तक लिखने का प्रयास किया है। वह कहाँ तक सफल हुआ है यह मेरे विद्यार्थीगण ही बतायेंगे। प्रस्तुत पुस्तक आगरा, राजस्थान, नागपुर तथा एम. ए. क विद्यार्थियों के लिए भी सहायक सिद्ध होगी।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने स्वयं के अन्वेषणों का स्थान-स्थान पर संदर्भ दिया है तथा पुस्तक भारतीय पृष्ठभूमि पर आधारित है। प्रत्येक अध्याय के अंत में सारांश दिया हुआ है जो विद्यार्थियों को परीक्षा के समय में शीघ्र देखने हेतु उपयुक्त सिद्ध होगा।

प्रस्तुत पुस्तक की प्रेरणा मुझे आदरणीय प्रा० सी० एम० अब्राहम साहब ने दी है। वे चाहते थे कि हिंदी-भाषी विद्यार्थियों के लिये ग्रामीण तथा नगरीय समाजशास्त्र पर पुस्तक लिखी जाय। मैं उनका सदैव आभारी हूँ; क्योंकि वे मुझे समय-समय पर मार्गदर्शन का कार्य भी करते रहे हैं।

नगरीय समाजशास्त्र आज भी शैशवावस्था में है। अभी भी यह विषय पृथक रूप से नहीं पढ़ाया जाता।

प्रस्तुत प्रयास को पूरा करने में मुझे जिन महानुभावों का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सहयोग प्राप्त हुआ है उनका मैं आभारी हूँ तथा उनके प्रति कृतज्ञता प्रगट करता हूँ। इन समस्त विद्वानों का यथास्थान उल्लेख किया गया है।

इस पुस्तक को पांडुलिपिबद्ध करने में श्रीमती सुमित्रादेवी खरे ने जो परिश्रम और अनन्त प्रेरणा का अनुदान दिया है उसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

पुस्तक के सम्बन्ध में उचित सुझाव का स्वागत है।

वसन्त, १९६२ —पी० एन० खरे

विषय-सूची

अध्याय १

नगरीय समाजशास्त्र का अर्थ, परिभाषा एवं महत्व

Urban Sociology—Origin & Importance

नगरीय समाजशास्त्र से तात्पर्य है नगर के पर्यावरण में सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन करने वाला शास्त्र। यह विज्ञान नगरों के एक विशेष प्रकार के जीवन का क्रमबद्ध वर्णन है।

ई. ई. बर्गेल की परिभाषा—

"नगरीय समाजशास्त्र वह शास्त्र है, जिसमें नगरीय जीवन का सामाजिक क्रिया, सामाजिक सम्बन्धों एवं सामाजिक संस्थाओं पर क्या प्रभाव पड़ता है तथा नागरिक जीवन पर आधारित सभ्यता का क्या स्वरूप है इसका अध्ययन किया जाता है"।[1]

लॉरी नेल्सन की परिभाषा—

"नगरीय समाजशास्त्र, नगरीय पर्यावरण में मनुष्यों के तथा नगरीय समूहों के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन है।"

नगर में एक विशेष प्रकार का पर्यावरण होता है। यह पर्यावरण ग्रामों के पर्यावरण से भिन्न है। अनेक विद्वानों ने नगर के पर्यावरण को कृत्रिम पर्यावरण कहा है। नगर का जीवन, ढंग, रहन-सहन, रीति-रिवाज, व्यवहार, सामाजिक संस्थायें एक विशिष्ट प्रकार की होती हैं।

नगर के सदस्यों के मार्ग दर्शन के लिये कुछ निर्धारित चिन्ह होते हैं जिन्हें समझना नगर के लोगों के लिये आवश्यक है। यही कारण है कि किसी भी नगर में यदि बाहर से कोई व्यक्ति आता है तो हम उसे पहिचान लेते हैं।

---

1. "Urban Sociology deals with the impact of city life on social action, social relationships, social institutions and types of civilization derived from and based on urban modes of living."

—Bergel, E.E. : 'Urban Sociology', p.3

नगर में अनेक व्यवसाय होते हैं। द्वैतीयक समाज एवं स्वार्थी लोग अधिक होते हैं। इस जीवन पद्धति ने नगरवाद को जन्म दिया है।

"नगरवाद एक विशेष प्रकार के जीवन का ढंग हैं"।[1] नगर के सदस्य प्रकृति पर कभी निर्भर नहीं होते तथा वे कभी प्रकृति की परवाह नहीं करते। वे मनुष्यों पर तथा उनके सामाजिक सम्बन्धों पर भरोसा करते हैं क्योंकि नगर का पर्यावरण मनुष्य द्वारा निर्मित है।

नगरीय समाजशास्त्र एक पृथक् विज्ञान के रूप में—

नगरीकरण एक आधुनिक वस्तु है। प्रारम्भ में नगर या नगरीकरण के नाम से लोग परिचित नहीं थे। नगर हमारे वैज्ञानिक आविष्कारों और खोजों का ही परिणाम हैं। जब मनुष्य का ज्ञान धीरे-धीरे विकसित होता चला गया और वह विना कृषि के अपने जीवन का निर्वाह करने के योग्य हुआ तो नगरीकरण का प्रवेश हुआ। मनुष्यों ने ग्रामों से बिल्कुल भिन्न रूप नगरों को प्रदान किया। आज एक अच्छे नगर में जीवन की वे सभी सुविधायें प्राप्त हैं जो ग्राम में दुर्लभ हैं। आवागमन के साधनों में वृद्धि, धन, अर्थव्यवस्था एवं मशीनों के आविष्कार ने नगरीकरण को जन्म दिया और प्रोत्साहित किया। नगरीकरण के जन्म के पश्चात ही नगरीय समाजशास्त्र का जन्म हुआ।

नगर के जीवन का क्रमबद्ध वर्णन सन् १५९८ में Giovanni Botero ने किया है। यही नगरीय समाजशास्त्र पर प्रथम पुस्तक मानी जाती है। इसके पश्चात् अनेक विद्वानों का ध्यान नगरों की ओर आकर्षित हुआ।

रॉबर्ट पार्क ने सन् १९१४-१५ में नगर जीवन पर विस्तृत अध्ययन एवं अनुसंधान करने के लिये एक प्रयोगशाला का निर्माण किया। इन्होंने नगर तथा नगर के जीवन की विशेषताओं पर अनेक लेख प्रकाशित किये। श्री पार्क का प्रयत्न सराहनीय रहा। इन्होंने सन् १९२५ में एक पुस्तक "The City" नाम से प्रकाशित की। इसी समय से नगरीय समाजशास्त्र का एक पृथक् विज्ञान के रूप में जन्म हुआ। संयुक्त गणराज्य अमेरिका में जो समाजशास्त्रीय समिति है उसके अन्तर्गत इसी वर्ष एक सभा बुलाई गई, जिसमें नगरीय समाजशास्त्र पर चर्चाएँ हुई। शिकागो विश्वविद्यालय के विद्वान, पार्क तथा बर्जेस ने नगरीय समाजशास्त्र की एक विश्व-विद्यालयीन विज्ञान के रूप में रूपरेखा तैयार की।

---

1. " Urbanism is now generally regarded as a way of life." —*Wirth.*
[*Cited by Bergel : op. cit., P. 13.*]

सन् १९२९ में श्री लिण्ड तथा श्रीमती लिण्ड द्वारा लिखित दो पुस्तकें प्रकाशित हुई।[1] यह पुस्तकें मिडलटाउन में इनके द्वारा किये गये अध्ययन का ही परिणाम हैं। इन पुस्तकों में नगर, नगरीय जीवन, नगरीय सामाजिक स्तरण, बाल अपराध, अपराध, गंदी बस्तियाँ, नगरीय प्रवृति आदि पहलुओं का क्रमबद्ध वर्णन जो कि अध्ययन पर आधारित है, मिलता है।

नगरीय समाजशास्त्र पर अन्य प्रकाशन—

(१) डब्ल्यू० एल० वारनर एवं अन्य द्वारा लिखित "Yonkee City".

(२) श्री लींटन एण्ड कार्डीनर द्वारा लिखित "Plainville".

(३) गीस्ट एवं हलबर्ट द्वारा लिखित "Urban Society".

(४) लुइस ममफोर्ड द्वारा लिखित "Culture of Cities".

(५) श्री ई० ई० बर्गेल की "Urban Sociology".

नगरीय समाजशास्त्र का विकास—

योरुप में ग्रामों का नगरीकरण बड़ी तेजी से हुआ। योरुप तथा अमेरिका के तीव्र-गति से होने वाले उद्योगीकरण के कारण नगरीय समाजशास्त्र का विकास हुआ। यह विकास उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से शुरू हुआ। बीसवीं शताब्दी में निम्नलिखित विद्वानों ने नगरीय समाजशास्त्र पर अनेक लेख एवं पुस्तकें प्रकाशित करके इस नूतन युवा विज्ञान के विकास में योगदान दिया। यह विद्वान सर्व श्री नेल्स एण्डर्सन, अर्ल० इ० मुन्ट्ज, बर्जेस, पार्क, ओस्वाल्ड स्पेंगलर, नोओल पी० गिस्ट, एल० ए० हलबर्ट, लुइस ममफोर्ड, नाईल कारपेन्टर, बर्गेल, लुइस विर्थ तथा सर पैट्रिक गिड्स थे।

जैसे-जैसे नगरों का विकास होता गया तथा जनसंख्या का ग्रामों से नगरों की ओर आकर्षण बढ़ता गया वैसे-वैसे नगरीय समाजशास्त्र का महत्व बढ़ता गया। नगरीकरण एवं नगरवाद ने कई सामाजिक समस्याओं को जन्म दिया, जैसे नगरों की अत्यधिक भीड़भाड़, गंदी बस्तियाँ, वेश्या-व्यवसाय, भिक्षावृत्ति, बेकारी, अस्वास्थ्यप्रद जीवन, अपराध, बाल अपराध इत्यादि। इन समस्याओं की ओर अनेक नगरीय समाजशास्त्रियों का ध्यान गया तथा "नगर" समाजशास्त्रियों के लिये एक सामाजिक प्रयोगशाला तथा अध्ययन का विषय बन गया।

---

1. *Lynd, R. S. & Lynd, H. M.*: "The Middletown" and "The Middle Town in Transition"

नगर के जीवन में विभिन्नता पग-पग पर होती है। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, एवं अन्य संस्थाओं का प्राबल्य होता है। सामाजिक सम्बन्धों का जाल जटिल होता है। अतः इसका अध्ययन अत्यंत सावधानी से किया जाना चाहिये

प्रारंभिक धारणाएँ (Basic Concepts)

"नगर"—

नगर शब्द अंग्रेजी शब्द 'सिटी' (City) का हिन्दी पर्यायवाची शब्द है। City शब्द लैटिन शब्द Civitas से बना है जिसका तात्पर्य है नागरिकता। नगर क्या है यह सभी जानते हैं। फिर भी नगर के सम्बन्ध में कोई भी समाजशास्त्री एक दूसरे से सहमत नहीं है।

बर्गेल की धारणा —

समाजशास्त्र की अन्य बातों के समान नगर को भी एक भावनात्मक रूप कहा जा सकता है। नगर के अन्तर्गत निवासी, सामाजिक ढाँचा, यातायात के साधन आदि भिन्न प्रकार के ठोस तत्व हैं। इन तत्वों का कार्यात्मक संगठन ही नगर है। नगर में अनेक व्यवसाय होते हैं। नगर-नगर में अन्तर होता है। अतः 'नगर वह स्थान है जहाँ के लोग कृषि के अतिरिक्त दूसरे अनेक व्यवसायों में व्यस्त हों।[1]

जनसंख्या के आधार पर नगर—

संयुक्त गणराज्य अमेरिका में २,५०० से अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्र को नगरीय क्षेत्र में गिना जाता है तथा २,५०० से ५,००० और ५,००० से १०,००० जनसंख्या वाले नगरों को भिन्न-भिन्न श्रेणियों में बांटा जाता है। डेन्मार्क में २५० से अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्र को नगरीय क्षेत्र में गिना जाता है। डब्ल्यू० एफ० विलकॉक्स

---

1. "Like many other sociological categories the city is an abstraction, but the element of which it consists—residents, structure, means, of transportation, installations, and so on—are concrete entities of varying nature. 'What makes the city is the Functional Integration of its elements into a whole."

[*Bergel, op. cit.*, *P.* 5.]

के अनुसार नगर वह क्षेत्र है जिनमें जनसंख्या का घनत्व प्रति वर्गमील १,००० से अधिक हो।[1]

जनसंख्या के आधार पर "नगर" की धारणा यह भी कोई उचित अथवा सारभौमिक पैमाना नहीं है। जापान में ३,००० की आबादी वाली वस्तियों को, भारतवर्ष में ५,००० की जनसंख्या वाली बस्ती को, फ्रान्स में २,००० तथा नीदरलैण्ड में २०,००० जनसंख्या वाली बस्ती को नगर माना गया है।

सोरोकिन तथा जिमरमैन की धारणा[2]—

इन्होंने नगर की आठ विशेषताएँ वतलाई हैं :—

१. व्यवसाय—अधिकांश लोग कृषिविहीन व्यवसाय करते हैं। जैसे, उत्पादन, यान्त्रिक कार्य, व्यापार, विभिन्न उद्योग एवं प्रशासकीय कार्य।

२. पर्यावरण—पर्यावरण मनुष्य द्वारा निर्मित होता है। प्रकृति से पृथक्, जटिल।

३. समुदाय का आकार—बड़े आकार का समुदाय नगरवाद और समुदाय का आकार सकारात्मक रूप से सम्वन्धित।

४. जनसंख्या का घनत्व—जनसंख्या का दबाव, अत्यधिक घनत्व तथा नगरवाद सह-सम्बन्धित।

५. जनसंख्या की विषमता और समानता—उसी देश में एक ही समय में ग्रामों से अपेक्षाकृत अधिक विषमता।

६. सामाजिक विभेदीकरण एवं स्तरण—वर्ग प्रणाली, विभेदीकरण प्राय: अधिक।

७. गतिशीलता—नगरीयता तथा गतिशीलता में पारस्परिक सम्बन्ध सकारात्मक, संकट के समय ग्रामों की ओर निष्क्रमण।

८. अन्तक्रिया पद्धति—द्वैतीयक सम्बन्ध, प्रति मनुष्य प्रति समूह का अन्त: क्रिया पद्धति के लिये विस्तृत क्षेत्र, जटिल सामाजिक सम्बन्ध अधिकतर अवैयक्तिक, अल्पकालीन तथा स्वार्थ-लोलुप सम्बन्धों की प्रबलता।

---

1. *Willcox, W. F.* : 'The Urban Community,' (1926) (A redefinition of city in terms of density of population), P. 118.
[Cited by Bergel in 'Urban Sociology,' P. 6.]

2. *Sorokin, P. A. & Zimmerman, C.C.* : "Principles of Rural-Urban Sociology," PP. 56-57, quoted by A. R. Desai in 'Rural Sociology in India,' PP. 12-13.

: ४ : नगर संबंधी अन्य धारणाएँ—

(अ) शासन द्वारा विज्ञप्ति के द्वारा किसी भी स्थान को नगर घोषित करना।

(ब) नगर वह स्थान है, जो इतना विस्तृत है कि लोग आपस में एक दूसरे को नहीं जानते। सोमबर्ट इसे समाजशास्त्रीय परिभाषा कहते हैं।

(स) मोनियर के अनुसार 'नगर वह संपूर्ण समाज है, जिसका भौगोलिक पृष्ठ भाग जनसंख्या के लिये सीमित है। उस क्षेत्र के मानवी तत्वों की अपेक्षा क्षेत्रीय तत्व कम शक्तिशाली होते हैं'।[1]

परिस्थिति-शास्त्र (Ecology)—

Ecology शब्द वनस्पति-शास्त्र का है। समाजशास्त्रियों ने यह शब्द वनस्पति-शास्त्र से लिया है। पार्क ने इसका सर्वप्रथम प्रयोग किया था। पार्क को मानवी परिस्थिति-शास्त्र का पिता कहा जाता है। इसके पश्चात् अनेक विद्वानों ने मनुष्य का संबंध वनस्पति से बतलाया। वनस्पति भूमि में होती है। मनुष्य भूमि पर निवास करता है। वनस्पति के विकास के अध्ययन के लिये परिस्थिति शास्त्र का अध्ययन आवश्यक है। वैसे ही मानव के विकास के लिये मानवी परिस्थिति-शास्त्र (Human Ecology) अत्यावश्यक है। मानवी पर्यावरण मनुष्य द्वारा निर्मित होता है। वनस्पति का परिस्थिति-शास्त्र जैवकाय है, परन्तु मानवी परिस्थिति-शास्त्र सर्वपरी समाजशास्त्रीय है। अर्थात् सामाजिक पृष्ठभूमि में मानव निवास करता है उस समाज का क्या रूप है? सामाजिक संस्थाएं तथा प्रथाओं की स्थिति किस प्रकार है? मानव का समूहों में क्या स्थान है? इत्यादि।

परिस्थिति-शास्त्र की परिभाषा—

संयुक्तगणराज्य अमेरिका में परिस्थिति-शास्त्र के अध्ययन पर विशेष बल दिया जाता है। मानवी संबंधों एवं संघर्षों का अध्ययन करने के लिये यह विज्ञान आवश्यक है।

---

1. "A city is a complete society whose geographical base is particularly restrained for the size of its population or whose territorial element is relatively meager in amount compared to that of its human element",

गिस्ट और हलबर्ट के अनुसार—

"नगरों में व्यक्ति एवं संस्थाओं के विशेष विभाजन का अध्ययन तथा विभाजन के प्रारूप तथा प्रतिमानों की विनरण विधि"।[1]

हॉले के अनुसार—

"परिस्थिति-शास्त्र वह विज्ञान है, जो समुदाय के संगठन एवं विकास का अध्ययन कराता है।"

बर्गेल के अनुसार—

"परिस्थिति-शास्त्र मानव और उसके निवास के बीच पारस्परिक सम्बन्ध का सिद्धान्त है।"

अतएव हम कहेंगे कि नगरीय समाजशास्त्र के अध्ययन में परिस्थिति-शास्त्र महत्वपूर्ण है।

नगरवाद तथा नगरीयता—

नगरीयता की धारणा स्थिर नहीं हैं क्योंकि नगरीयता गत्यात्मक है। नगरवाद नगर-निवासियों के जीवन का ढंग है। नगर से तात्पर्य वहां के लोगों से है। नगरवाद और नगरीयता में अन्तर है। नगरवाद निवास की ओर संकेत करता है तथा नगरीयता निवास के मानवी समूहों का सम्बद्ध सिद्धान्त है।

नगरीयता ग्रामीण क्षेत्र से नगर की ओर के जीवन की प्रक्रिया है। जनसंख्या के आर्थिक तत्वों का इस प्रक्रिया पर प्रभाव पड़ता है। ग्रामीण जनसंख्या आँशिक रूप से कम होती जा रही है तथा नगर की जनसंख्या बढ़ती जा रही है।

नगरवाद सभ्यता की स्थिति है क्योंकि नगरों के जीवन ने ही मनुष्य को सभ्य बनाया है। संसार की समस्त महान सभ्यता नगरीय सभ्यता है। नगर ही व्यक्ति को विकास के लिये प्रोत्साहित करता है। नगर शिक्षा का एवं व्यापार व्यवसाय का केन्द्र होता है। जैसे-जैसे नगरवाद का विकास हुआ मानवी सभ्यता का विकास होता चला गया तथा समाज गत्यात्मक होने लगा।

नगरवाद का विपरीत परिणाम यह हुआ कि नगर निवासी स्वयं को ग्रामीण व्यक्ति से अधिक श्रेष्ठ एवम् बुद्धिमान समझने लगे। नगर निवासी नगरीय जीवन के कारण स्वार्थी बनते गये तथा वे ग्रामीणजन को एवं ग्राम को निम्न कोटि का समझने लगे।

1. "The study of the spatial distribution of persons and institutions in the city, and the processes involved in the formation of patterns of distribution". [*Urban Society* (1959), P. 12]

यातायात एवं संदेशवाहन के साधनों ने आधुनिक काल में नगरवाद को ग्रामों तक पहुँचाया है। अब नगरवाद नगरों तक ही सीमित नहीं है। वह गत्यात्मक है। संभव है कि शीघ्र ही वह परम्परागत ग्रामीण-समाज में भारी परिवर्तन ला देगा। ग्रामीण लोगों का नगरों में आवागमन प्रारंभ हो गया है तथा अब ग्रामीण समाज में भी नगरवाद फैलने लगा है।

समुदाय—

किंग्जले डेवीस के अनुसार "समुदाय सबसे छोटा क्षेत्रीय समूह है, जिसके अधीन सामाजिक जीवन के समस्त पहलू आ सकते हैं"।[1]

ऑगबर्न और निमकॉफ के अनुसार "किसी सीमित क्षेत्र में सामाजिक जीवन के संपूर्ण संघटन को समुदाय कहते है"।[2]

समुदाय के लिये एक क्षेत्रीय भू-भाग एवं हम की भावना आवश्यक है। परन्तु नगर समुदाय में हम की भावना का कदापि जन्म नहीं होता। नगरीय जीवन संघर्षमय जीवन होता है। यहाँ पर अवैयक्तिक सामाजिक संबंध एवं स्वार्थी समुदायों का प्राबल्य होता है।

नगरीय समुदाय में मैकआइवर की धारणा लागू नहीं की जा सकती। यहाँ समुदाय से हमारा तात्पर्य जीवन की उन विशेषताओं से है जो सामान्य रूप से एक होती है। नगर समुदाय एक विशेष पृष्ठभूमि या स्थान की ओर संकेत करता है।

प्रकरण का सारांश

१. बर्गेस तथा नेल्सन की परिभाषा।
२. नगरीय समाजशास्त्र एक पृथक विज्ञान के रूप में।
३. नगरीय समाजशास्त्र का विकास।
४. प्रारंभिक धारणायें—(अ) नगर (ब) परिस्थिति-शास्त्र (स) नगरबाद तथा नगरीयता (द) समुदाय।

---

1. *Davis, Kingsley* : "Human Society" (1954), P. 312.
2. *Ogburn & Nimkoff* : A Hand Book of Sociology" (1956), P. 269.

अध्याय २

नगरीय जीवन की विशेषताएँ

Characteristics of Urban Life

१. विशेष प्रकार के लोग—

नगर के लोग नगरीय कहलाते हैं। ये लोग विशेष प्रकार के होते हैं। ग्राम में एक ही व्यवसाय के लोगों की बहुलता होती है। भारत में ग्रामों की अपेक्षा नगरों में जनसंख्या अत्यंत कम है फिर भी यहाँ अनेक प्रकार के लोग रहते हैं। यहाँ भिन्न-भिन्न उद्योगों में, कलाओं में, नौकरी आदि में अनेक व्यक्ति कार्य करते हैं। नगर में द्रव्य, अर्थ व्यवस्था होने के कारण इसके प्रति अनेक लोग आकर्षित होते हैं। कोई शिक्षा के लिये, कोई व्यापार व्यवसाय के लिये, कोई नौकरी के लिये नगर में आते हैं। इन लोगों में भाषा, धर्म, संस्कृति, जाति आदि की भिन्नता होती है। नगर में भूमि कम और जनसंख्या अधिक होने के कारण निवास-स्थान की समस्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। अनेक लोग होटलों में या सस्ते घरों में एवं धर्मशालाओं में रहकर अपना काम चला लेते हैं।

२. पड़ोसीपन की भावना का अभाव—

नगर में पड़ोस होते हैं, लेकिन पड़ोसीपन की भावना नहीं होती। प्रत्येक व्यक्ति का हित भिन्न प्रकार का होता है। ये लोग आचार-विचार व्यवहार आदि में एक दूसरे जैसे नहीं होते। बम्बई, कलकत्ता जैसे महानगरों में एक ही मकान में रहने वाले दो किरायेदार एक दूसरे को नहीं जानते। जैसे-जैसे नगरों का विकास हो रहा है अपनत्व की भावना शिथिल हो रही है।

३. अवैयक्तिक सामाजिक संबंध—

नगरों के स्वरूप के कारण वहाँ पर वैयक्तिक संबंध नहीं हो पाते। कोई किसी के बारे में बिना कारण जानना नहीं चाहता। नगर के लोग संपूर्ण निवासियों को

नहीं जानते । एक विद्वान ने ठीक ही कहा है । 'नगर का जीवन स्वार्थपूर्ण, द्वैतीयक एवं कष्टमय होता है' ।[1]

४. **सामाजिक असमानता—**

यह नगर की प्रमुख विशेषता है । नगर में खुली वर्ग प्रणाली होती है । नगर में सेठ साहूकार लोग भी रहते हैं तथा निम्नस्तर के लोग भी । नगरों में एक छोर पर तो हमें बड़े-बड़े भवन, रंगरेलियाँ, मोटरों में घूमने वाले लोग दिखाई पड़ते हैं, तो दूसरी ओर गंदी बस्तियाँ तथा फुटपाथ पर सोने वाले लोग । एक ओर विलासिता का जीवन है तो दूसरी ओर लोग पेटभर खाने को तड़फते हैं ।

५. **सामाजिक नियमों की बहुलता—**

नगर वह स्थान है जहाँ पर विभिन्न जाति, प्रजाति, धर्म तथा क्षेत्र के लोग आकर इकट्ठा होते हैं ।[2] इस कारण वे संस्कृति में भिन्न होते हैं । महानगर में समस्त जाति एवं धर्म के लोग निवास करते हैं तथा उनके सामाजिक नियम अलग-अलग प्रकार के होते हैं ।

६. **नगरीय चमक-दमक एवम् कृत्रिमता—**

नगर में बिजली होती है जिसके प्रकाश में लोग चमकते हैं । नगर निवासियों के रहन-सहन में कृत्रिमता पग-पग पर दृष्टिगोचर होती है । सामाजिक प्रतिष्ठा को बनाये रखने के लिये लोग बाहर ठाटबाट दिखाते हैं । नगर में ऐसे सफेदपोश घूमते हैं जो बाहरी ठाटबाट दिखाते हैं पर उनकी जेबों में एक पैसा भी नहीं होता । स्त्रियाँ अत्यधिक श्रृंगार करती हैं । उनका सौंदर्य नैसर्गिक नहीं होता उसमें कृत्रिमता होती है ।

७. **फिजूलखर्चीता—**

कभी कृत्रिमता ऐसी भयानक हो जाती है कि लोग मूलभूत आवश्यकता की पूर्ति के साधनों को क्रय नहीं करते वरन् सामाजिक प्रतिष्ठा प्रस्थापित करने के लिये फिजूलखर्ची करते हैं । नगरों में बड़े-बड़े होटल होते हैं जहाँ बैरे को बक्शीस दी जाती है । नगर के व्यक्तियों में इसकी प्रतियोगिता लगी रहती है कि अधिक बक्शीस कौन देता है इत्यादि अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं ।

८. **परिवार शक्तिहीन होते हैं—**

नगरीय परिवार का प्रभाव कम होता है । शिक्षा और व्यवसाय का प्रभुत्व होने के कारण परिवार के सदस्य अधिक समय परिवार की चहारदीवारी के बाहर

---

1. "Urban life is selfish, secondary and severe".
2. "City is a place, where people from different caste, race, religion, and region come together."

[*The author*]

ही रहते हैं जिसके कारण परिवार के मुखिया का कोई नियंत्रण सदस्यों पर नहीं रहता। जो सदस्य कमाने वाले होते हैं वे तो मुखिया की ज़रा भी पर्वाह नहीं करते। स्त्रियों का नगर में घर से बाहर रहना तथा कार्य करना भी इसमें योग देता है।

९. व्यक्तिवादिता—

नगर के पर्यावरण में व्यक्तिवादिता का विकास हो रहा है। इसका कारण स्त्रियों की आर्थिक स्वतंत्रता, पारिवारिक संघर्ष, शिक्षा, सामाजिक गतिशीलता एवम् रोमांस पर आधारित जीवन है। नगर का प्रत्येक व्यक्ति अपने हितों के लिये कार्य करता है। व्यक्तिगत स्वार्थ प्रबल हो रहा है।

१०. प्रतिस्पर्धा का जीवन—

नगर वह क्षेत्र है जहां प्रतिस्पर्धा पग-पग पर होती है, विशेषतः व्यापार, व्यवसाय और शिक्षा के क्षेत्र में। नगर का जीवन व्यक्ति को प्रतिस्पर्धा सिखाता है। यहाँ पर व्यक्ति को विकास के अनेक साधन होते हैं।

११. श्रमविभाजन और विशेषीकरण—

नगर में बड़े-बड़े उद्योग, कल-कारखाने आदि होते हैं जहां पर अनेक वस्तुओं का निर्माण होता है। श्रम करने वाले श्रमिक भी लाखों की संख्या में कार्य करते हैं। प्रत्येक श्रमिक एक विशेष प्रकार का कार्य करता है। एक ही कार्य करते-करते वह कुशल हो जाता है।

१२. द्वैतीयक समूहों की बहुलता—

नगर में अधिकतर द्वैतीयक समूह होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति का स्वार्थ भिन्न प्रकार का होता है जिस कारण नगर में अनेक स्वार्थ-समूहों का निर्माण होता है। इन समूहों के सदस्यों पर प्रत्यक्ष सामाजिक नियंत्रण प्रथा आदि के द्वारा कदापि संभव नहीं है। नगर में सरकार या प्रशासन द्वारा लोगों पर नियंत्रण रखा जाता है।

१३. नगरीय समस्याएँ—

नगरों का विकास हो रहा है जिस कारण नगरों में घनी आबादी एवं अत्यधिक भीड़-भाड़ की समस्या, गंदी बस्तियों की समस्या, मद्यपान आदि समस्या उत्पन्न हो रही हैं। सामाजिक जीवन में असमानता एवं मशीनों के प्रयोग के कारण औद्योगिक बेकारी बढ़ रही है जिसका प्रभाव जीवन स्तर पर पड़ रहा

है । यही कारण है कि अपराध एवं बाल अपराध की समस्या का बोल-बाला है । नगरों में पुरुषों की संख्या स्त्रियों से कहीं ज्यादा है । स्त्रियों का अभाव है जिस कारण वेश्या-व्यवसाय भी चल रहा है । जैसे-जैसे नगरों में संख्या बढ़ रही है वैसे-वैसे जटिलता भी बढ़ रही है । नगरवाद के परिणामस्वरूप अनेक प्रकार की नवीन समस्याएं जन्म ले रही है । "नगर के जीवन में अनेक विषेलै-चक्र पाये जाते हैं" ।[1]

१४. मानसिक अशान्ति—

नगर के जीवन में इतनी कृत्रिमता आ गई है कि लोगों का जीवन यांत्रिक हो गया है । नगर में लोग अपने कार्य में इतने व्यस्त हैं कि उन्हें ,धन कमाना ही एक महत्वपूर्ण व्यवसाय हो गया है । नगर के जीवन में अनिश्चितता का अन्धकार पाया जाता है । बड़े-बड़े उद्योगों में लगे हुए यन्त्र अनेक प्रकार के रोगों को एवं बीमारियों को जन्म देते हैं । परिवार के मुखिया को परिवार की चिंता रहती है, बालकों एवं युवा कन्याओं की चिंता रहती है तथा उनकी सुरक्षा का भय बना रहता है । यह कारण है कि नगरीय व्यक्ति मे मानसिक अशान्ति घर किये हुए होती है ।

१५. प्रणय विवाह—

नगर में शिक्षा के कारण स्त्रियां भी नौकरी करती हैं । इस कारण वे अधिकाधिक पुरुषों के सहवास में आती हैं । नगरीय जीवन में सिनेमा, नाटक, क्लब आदि के कारण प्रणय होना स्वाभाविक है । प्रणय करना नगरीय जीवन के लिये एक स्वाभाविक बात हो गई है । अधिकतर अब विवाह देरी से होने लगे हैं । विवाह से पहले पति-पत्नी एक दूसरे को अच्छी तरह से जानते हैं । यह नगरीय जीवन का ही प्रभाव है ।

नगर यानी सभ्यता—

नगरीय सभ्यता एक विशेष प्रकार की होती है । यहां के जीवन में "हम की भावना" अथवा आत्मीयता का अभाव होता है । 'हलो' मित्रता होती है । प्रत्येक व्यक्ति अपने को एक विशिष्ट प्रकार का मानता है । ग्रामीण व्यक्ति को वह असभ्य एवं तुच्छ समझता है । यह कहना अत्यन्त कठिन है कि वास्तव में कौन क्या है । नगरीय सभ्यता का आधार धन होता है । यहाँ पर धन का अत्यधिक महत्व है ।

---

1 "In the city, there is multiplicity of vicious circles.'

[*The author*]

सारे संसार में नगरीय सभ्यता ही श्रेष्ठ मानी जाती है। राबर्ट बिरस्टैड ने ठीक ही लिखा है कि प्रत्येक सभ्यता का इतिहास उसके ग्रामों का नहीं बल्कि उसके नगरों का ही इतिहास है। सभ्यता का तात्पर्य है नगर और नगर का अर्थ है सभ्यता। प्रारम्भ में मनुष्य ने नगरों का निर्माण किया और उसके बदले में नगरों ने उसे सभ्य बनाया।[1]

नगर की महानता और विशेषता उसके आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन में है। आधुनिक समय में नगर व्यापार, प्रशासन एवं शिक्षा के केन्द्र माने जाते हैं।

नगरीय जन और जीवन—

मनुष्य की प्रकृति पर नगर के जीवन का प्रभाव पड़ता है। प्रतिदिन नगर में व्यक्ति अनेक व्यक्तियों के तथा समूहों के सम्पर्क में आता है। वह अपने मालिक या स्वामी से अलग प्रकार का सम्बन्ध रखता है तथा धोबी एवं अन्य व्यवसाय के लोगों से भिन्न प्रकार से सम्बन्ध रखता है। ग्राम में सब लोग एक दूसरे को जानते हैं पर नगर के जीवन में ऐसा नहीं है। यहां कार्य होने पर सेठ लोग निम्नस्तर के लोगों से भी घनिष्टता रखते हैं और कार्य न होने पर उनकी पूछ-ताछ नहीं करते।

नगरीय जन एक दूसरे से विशेष दिलचस्पी नहीं रखते। सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक तत्व नगरीय जीवन में परिवर्तन लाते हैं। यह परिवर्तन नगरीय पर्यावरण में लोगों का होता है क्योंकि "नगर से तात्पर्य है जनता"।

नगर में जो बाहर से आगन्तुक महाशय आते हैं वे नगरीय जीवन में एक विशिष्ट बात पाते हैं। नगर में बहुत से कार्य इशारे से होते है। ट्रैफिक के नियम होते हैं। जनता को उन नियमों का पालन करना पड़ता है। नगर का व्यक्ति एकदम स्फुर्तिला और होशियार दिखाई पड़ता है। ग्रामीण व्यक्ति जिस प्रकार एकदम पहचाना जाता है वैसे ही शहरी व्यक्ति एकदम पहचाना जाता है। फिर भी शहर-शहर के जन और जीवन में अन्तर होता है। एक शहर का व्यक्ति यदि नये शहर में जाता है तो उसे वहाँ के लोग एकदम पहचान लेते हैं। शहरी प्रवृत्ति समस्त लोगों में एक सी नहीं होती और शहर के जीवन का उस पर प्रभाव पड़ता है।

---

1. "The history of every civilization isthe history not of its countryside, but of its cities and towns. Civilization means the city and city means civilization. Man originally built the city, and the city, in turn, civilized him".

[*R. Bierstedt* : 'Social Order', P. 372]

नगर वह स्थान है जहाँ अपराधी भी रहते हैं तथा एक बुद्धिमान व्यक्तियों का समूह भी निवास करता है। यह दोनों समूह परम्परात्तम व्यवहार करते हैं। ग्रामीण समाज में सामाजिक व्यवहार पर प्रथा के कारण नियन्त्रण रखा जाता है, पर नगर में प्रथा और धर्म आदि का कोई महत्व नहीं है। नगरीय सामाजिक संगठन तथा प्रशासकीय तत्व नगरीय जनता पर नियन्त्रण रखते हैं। फिर भी नगरीय व्यक्ति अपने आपको स्वतन्त्र मानता है। क्योंकि यह नियन्त्रण उसके सुरक्षा के ही लिये होता है। नगर के जीवन में कानून का महत्व होता है। नगरीय व्यक्ति कानून का पालन करते हैं। जितना विशाल नगर होगा वहाँ का व्यक्ति अपने को उतना ही स्वतन्त्र मानता है।

नगर नियन्त्रण के प्रकार—

नगर नियन्त्रण के ४ प्रकार माने जाते हैं :

(१) आर्थिक दबाव।

(२) कानूनी प्रभाव।

(३) सामाजिक प्रभाव।

(४) नगरीय प्रथाएँ एवं व्यवहार।

(१) नगर वह क्षेत्र है जहाँ सिक्के बनते हैं। नगर की ओर लोग व्यापार, व्यवसाय तथा भिन्न-भिन्न उद्योगों के कारण आकर्षित होते हैं। मजदूर प्रायः ग्रामीण क्षेत्र का होता है। उसका उद्देश्य अपने लिये तथा अपने परिवार के लिये धन कमाना होता है। नगर में प्रत्येक सम्बन्ध स्थाई नहीं होते। कभी-कभी तो अत्यन्त अस्थाई सम्बन्ध तथा सम्पर्क लोगों का आता है। टैक्सी वाले, रिक्शा वाले, तांगे वाले, पान वाले, अखबार बेचने वाला लड़का, नाई, इनका सम्बन्ध प्रत्येक व्यक्ति से आता है। फिर भी शहरी व्यक्ति इनके बारे में या उनके परिवार के बारे में जानकारी नहीं करते। यह सम्बन्ध अल्पकालीन होते हैं तथा इनमें सीमित उद्देश्य पूर्ति साध्य है।

(२) नगर के जीवन में कानून का प्रभाव महत्वपूर्ण है। पुलिस एवं अन्य शासकीय अधिकारी इस बात का ध्यान रखते हैं कि जनता राज्य के कानूनों का भली-भाँति पालन कर रही है या नहीं। जनता को पुलिस का भय बना रहता है। नगरीय जनता को मार्ग दर्शन नहीं देना पड़ता। वे शिक्षित होते हैं और अधिकतर लोग नियमों का पालन करते हैं, जिसका प्रभाव उनके सामाजिक सम्बन्धों पर पड़ता है।

(३) नगर में विभिन्न जाति,धर्म तथा वर्ग के लोगों का जमघट होता है तथा विशेष प्रकार के मोहल्ले होते हैं। मनोरंजन के लिये अनेक प्रकार की सुविधा होती है। बालोद्यान, युवा लोगों के लिए मनोरंजन के केन्द्र तथा बूढ़े-बड़ों के लिये भजन मण्डली आदि संस्थाओं के कारण लोग एक दूसरे के सम्पर्क में आते हैं। संस्कृति का आदान-प्रदान होता है। यही कारण है कि एक नगर के लोग एक जैसे दिखाई पड़ते हैं।

(४) नगर का जीवन निर्धारित नियमों पर चलता है। कोई व्यक्ति सड़क पर नंगा नहीं घूमता, इसलिये नहीं कि यह कानून के द्वारा अवैध है पर यह नगरीय सभ्यता एवं नियमों के विपरीत है। यदि नगरीय व्यक्ति सड़क पर ठीक नहीं चलता या अपना वाहन गलत मार्ग से चलाता है, तो दुर्घटना होने का भय होता है। वैसे ही नगर में सामाजिक प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिये अतिथि का आदर किया जाता है। भारतीय नगरों में "चायपान" अत्यन्त सामान्य अतिथि सत्कार का चिन्ह है।

"नगर का जीवन पग-पग पर आयोजित एवं सुसज्जित होता है। पूर्णतः वह अत्यन्त कम निर्देशन में चलित होता है"।[1]

अन्त में हम कहेंगे कि नगरीय जीवन के प्रति व्यक्तियों का आकर्षण नगरीय जीवन को दायित्व प्रदान करता जा रहा है। नगर के जीवन में अनेक सुविधाएँ होती हैं। नगर शिक्षा के केन्द्र होते हैं तथा नगरों में व्यापार, व्यवसाय होता है। नगर में नागरिकों के स्वास्थ्य का पूर्ण प्रबन्ध होता है और मनोरंजन की समुचित व्यवस्था होती है।

प्रकरण का सारांश

नगरीय जीवन की विशेषताएँ :

१. विशेष प्रकार के लोग।
२. पड़ोसीपन की भावना का अभाव।
३. अवैयक्तिक सामाजिक सम्बन्ध।
४. सामाजिक असमानता।
५. सामाजिक नियमों की बहुलता।
६. नगरीय चमक-दमक एवं कृत्रिमता।
७. फिजूलखर्चीता।

---

1. "Urban life is well planned in every detail. As a whole, it moves with a minimum of guidance."

८. परिवार-शक्तिहीन होते हैं।
९. व्यक्तिवादिता।
१०. प्रतिस्पर्धा का जीवन।
११. श्रम विभाजन।
१२. द्वैतीयक समूहों की बहुलता।
१३. नगरीय समस्याएँ।
१४. मानसिक अशान्ति।
१५. प्रणय विवाह।
१६. नगर यानी सभ्यता।
१७. नगरीय जन और जीवन।
१८. नगर नियंत्रण के प्रकार।
१९. नगरीय प्रथा एवम् व्यवहार।

अध्याय ३

'नगर' का इतिहास

History of the 'City'

नगर कैसे बने—

यह निश्चित रूप से कहना कठिन है कि नगर कब बने होंगे। प्राचीन समय में भी नगर थे। नगर की उत्पत्ति सामाजिक एवं आर्थिक जीवन परिवर्तन का ही परिणाम है। राबर्ट विरस्टैड के अनुसार नगरों की उत्पत्ति सात या आठ हजार वर्ष पूर्व हुई होगी। जब से मानव ने कृषि के अतिरिक्त अन्य व्यवसाय को ढूंढ़ निकाला तब से ही नगर बन गये। दस्तकारी के स्तर-तर नगरों का जन्म सम्भव नहीं हो सका क्योंकि जनसंख्या के एक स्थान पर केन्द्रित होने से लाभ की अपेक्षा हानियाँ अधिक थीं। वे एक स्थान पर रहकर अपनी उत्पादित वस्तुओं का आवागमन के साधनों के अभाव में वितरण नहीं कर सकते थे। कोयले और लोहे के प्रयोग, आवागमन के साधनों में आविष्कार, तथा मशीनों की खोज ने ही नगरों को जन्म दिया। प्राचीन समय में जो नगर थे वे केवल राजाओं की राजधानी मात्र होने से जनसंख्या पर आधारित थे तथा व्यापार व्यवसाय के कारण उनका विकास हुआ। जो स्थान एक देश में या एक देश से दूसरे देश को जाने के मार्गों पर स्थित थे और जिधर होकर व्यापारी जाते थे वहाँ नगर बसने लगे। भारतवर्ष में मध्य एशिया को जाने वाले मार्ग पर जिधर से काफिले जाते थे वहाँ का महत्व बढ़ता गया एवं नगर बनते गये। कुछ लेखकों ने बतलाया है कि प्रथम नगर प्रारंभिक ग्राम थे। पश्चात् उनका नगरों में परिवर्तन हुआ।

निम्नलिखित कारकों ने नगरों की उत्पत्ति में योगदान दिया :

१. **कृषि में उत्पादन का आधिक्य** (Surplus of Agricultural production) :—

जब तक कृषि का उत्पादन केवल ग्रामवासियों के लिये ही पर्याप्त था तब

तक नगर का जन्म सम्भव नहीं था। जब ग्रामों में अत्यधिक उत्पादन होने लगा तब लोग सोचने लगे कि इसका क्या किया जाय। यही कारण है कि 'नगर' ऐसे स्थान पर बन गये जहाँ खेती नहीं होती। नगर निवासियों का खाद्य सामान ग्रामों से ही आता है। धीरे-धीरे कृषि कला में उन्नति होती गई तथा कृषि उत्पादन भी बढ़ने लगा। राबर्ट विरस्टड ने उचित ही कहा है "यह वास्तव में यथार्थ है कि जो भी गेहूं के दो दाने को उगा सकता है, जहाँ पहले एक ही उगता था, उसने नगरों के विकास में योग दिया है"।[1]

२. यातायात के साधनों की उपलब्धि (Availability of means of Transport)—

केवल अत्यधिक कृषि उत्पादन ही नगरों की उत्पत्ति में पर्याप्त कारक नहीं है। अधिक धान को नगर तक ले जाने का प्रबन्ध भी होना चाहिये। जब यातायात के विकसित साधनों का आविष्कार हुआ तथा उपलब्धि हुई तब ही अत्यधिक खाद्य सामग्री का ग्रामों से बाहर जाना सम्भव हो सका। जैसे यातायात के विभिन्न प्रकार के साधन नाव, चाक, मोटर गाड़ी, रेल गाड़ी आदि का अविष्कार हुआ तब ही ग्रामों का यह अत्यधिक कृषि उत्पादन बाहर जाना सम्भव हो सका।

३. जनसंख्या में वृद्धि (Increase in Population)—

नगरों की उत्पत्ति में जनसंख्या का बढ़ जाना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जब ग्रामों की जनसंख्या में वृद्धि होने लगी तब निवास स्थान का अभाव होने लगा। वैसे ही समस्त जनसंख्या कृषि कार्य में नहीं लगती। कुछ लोग बिना कार्य के कुछ समय तक रहने लगे। वे निवास तथा श्रम की समस्या के कारण अलग बस्ती ग्रामों से दूर ढूँढ़ने लगे जहाँ कृषि कार्य के अलावा दस्तकारी अथवा अन्य कार्य होने लगा। यही बस्तियाँ शनैः-शनैः नगरों का स्वरूप लेने लगीं।

४. अनुकूल जलवायु (Favourable Climate)—

उपरोक्त नयी-नयी बस्तियां जहाँ बसने लगीं वहाँ का जलवायु अनुकूल न होता तो लोग कदापि नहीं रहते। लोग वहाँ ही रहना अधिक पसन्द करते हैं जहाँ अत्याधिक गर्मी अथवा अत्याधिक सर्दी न हो तथा रेगिस्तान न हो। लोग जहाँ आसानी से खाद्य सामग्री प्राप्त कर सकें; अपना व्यवसाय कुशलतापूर्वक कर सकें एवं उनके

---

1. "It has truly been said that whoever can make two grains of wheat grow where one grew before has contributed to the growth of cities.".

[*R. Biersteadt* : 'The Social Order' (1957), P. 374]

निवास-स्थान की समुचित व्यवस्था हो सके। यही कारण है कि टिग्रीस, नाईल, सिंधु-घाटी आदि में संसार के प्राथमिक नगर बने।

५. सैनिक शिविरों की स्थापना (Establishment of Army Camps)—

सैनिक शिविरों की स्थापना के कारण राजा के कर्मचारी, अफसर, सैनिक, सेना इत्यादि एक स्थान पर रहने लगे। उनका समस्त कार्य एवं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अनेक व्यक्तियों की मांग हुई। शक्ति के आधार पर नगरों का जन्म सैनिकों का एक स्थान में रहना ही था।

बर्गेल महोदय ने ठीक ही कहा है। "संक्षेप में यह मान लिया जाता है कि प्रारंभिक नगर पराजित जनसंख्या के क्षेत्र में स्थापित स्थायी सैनिक शिविर थे"।[1]

६. सामाजिक संघटन का स्वरूप (A Form of Social Organisation)—

डेवीस ने अपनी पुस्तक (Human Society) में लिखा है कि केवल खाद्य सामग्रियों के बढ़ जाने तथा जनसंख्या के बढ़ जाने से नगर नहीं बने हैं। उसके सुचारुता के लिये सामाजिक संघटन का स्वरूप भी होना चाहिये। जो लोग समाज में ऐसे स्तर के हैं उदाहरण के लिये, जैसे धार्मिक तथा सरकारी अफसर, व्यापारी, कारीगर, जिनका प्रत्यक्ष रूप से कृषि से संपर्क न होने से वे नगर में ही निवास कर सकेंगे। तब ही संभव है कि जब कुछ लोगों के द्वारा अधिक व्यक्तियों के लिये खाद्य सामग्री उत्पन्न की जा सकेगी और इस प्रकार कुछ लोगों को कृषि से अवकाश मिल जायगा और वे कृषि के अतिरिक्त अन्य कार्यों को करने हेतु नगर में जाकर बस जायेंगे।[2]

इस प्रकार कृषि नगर की सम्भावना को बढ़ाती है, परन्तु स्वयं संस्कृति-विशेषकर सामाजिक संघटन के रूप में, उसे सत्यता का रूप देती है तथा वास्तव में उसे उत्पन्न करती है।[3]

---

1. 'In brief, it is postulated that the first cities were permanent army camps established in the area of a vanquished population'.
[*Bergel, E. E.* : op. cit., P, 18.]
2. *Davis, Kingsley* : "Human Society", P. 430.
3. 'Agriculture, thus makes the city possible, but culture itself especially in the form of Social Organization makes it probable, and indeed brings it into being.' [*R. Bierstead*t : op. cit., P. 375.]

७. नगरों के प्रति आकर्षण (Attraction towards Cities)—

नगर वह क्षेत्र है जहाँ धन, अर्थव्यवस्था होती है। व्यापार, व्यवसाय एवं शिक्षा का स्थान होता है जो लोगों के लिये आकर्षण का केन्द्र है। ढाका की उत्पति में व्यापार का हाथ था। अन्य देशों में भी विशेषतः ग्रीस और रोम में उद्योग एवं व्यापार के कारण ही नगरों का जन्म हुआ। कृषि से अवकाश प्राप्त व्यक्ति व्यापार, व्यवसाय के कारण नगरों की ओर आकर्षित हुए। संक्षेप में नगरों के प्रति आकर्षण ही नगरों के जन्म का कारक है।

प्रकरण का सारांश

१. नगर कैसे बने।

२. नगरों की उत्पत्ति के कारक।

(१) कृषि में उत्पादन का आधिक्य।
(२) यातायात के साधनों की उपलब्धि।
(३) जनसंख्या में वृद्धि।
(४) अनुकूल जलवायु।
(५) सैनिक शिविरों की स्थापना।
(६) सामाजिक संघटन का स्वरूप।
(७) नगरों के प्रति आकर्षण।

अध्याय ४

औद्योगीकरण एवं नगरीयकरण का प्रभाव और परिणाम

औद्योगीकरण (Industrialisation)—

उत्पादन एवं व्यवसाय को प्रोत्साहित कर बढ़ावा देने की प्रक्रिया को औद्योगीकरण कहा जाता है। संसार में सर्वप्रथम १८ वीं शताब्दी के मध्यकाल में इंग्लैंड में औद्योगिक क्रान्ति हुई जिसका प्रभाव वहाँ के निवासियों के साथ-साथ संसार के सभ्य देशों के निवासियों पर भी पड़ा। जार्ज स्टीफन्सन का इंजिन का आविष्कार, मारकोनी महोदय का रेडियो का आविष्कार तथा अन्य आविष्कारों के कारण मानव श्रम का भार कम हुआ तथा कल कारखानों में भारी मात्रा में उत्पादन होने लगा। कोयला, लोहा और सूती वस्त्र आदि उद्योग पनपने लगे। एक स्थान से दूसरे स्थान माल ले जाने के हेतु यातायात के साधनों की आवश्यकता प्रतीत हुई और शनैः शनैः इन साधनों में नवीनता एवं प्रगति प्रारम्भ हो गई।

औद्योगीकरण का प्रसार संसार के सभी देशों में होना प्रारम्भ हुआ, जिसमें भारत भी पीछे नहीं रहा। विशेषतः स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात पंचवार्षिक योजनाओं के माध्यम से सूती वस्त्र उद्योग, लोहा एवं इस्पात, यान्त्रिक उपकरण, खाद्य सामग्री, तथा लघु उद्योगों को अत्याधिक बढ़ावा मिल रहा है। आज भारत में विज्ञान एवं यांत्रिक विधि में आविष्कार के कारण विद्युत, बेतार के तार, रेडियो सेट, टेलीफोन, यांत्रिकी आदि में काफी प्रगति हुई है वह सराहनीय है। वह दिन दूर नहीं जबकि भारत भी अमेरिका, चीन तथा सोवियत रूस से बड़े-बड़े उद्योगों के मामलों में मुकाबला कर सकेगा।

आज का युग "औद्योगिक युग" है। मानव आज शक्तिशाली होगया है। उसके जीवन में भी भारी परिवर्तन आ गया है। औद्योगीकरण ने उसके जीवन को मोड़

दिया है। बार्न्स ने उचित ही कहा है "औद्योगिक क्रान्ति, जिसके कारण मानव इतिहास में महान परिवर्तन आये हैं, ने प्राथमिक सामाजिक पद्धतियों की नीवों को खोद डाला है"।[1]

औद्योगीकरण के प्रभाव एवं परिणाम

१. मानव शक्तिशाली हो गया है—

औद्योगीकरण के कारण मानव की शक्ति अत्याधिक बढ़ गई है। बिजली एवं अन्य वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण मानव शक्तिशाली हो गया है। शक्ति चालित मशीनों द्वारा बड़े पैमाने में उत्पादन हो रहा है तथा वह अपना जीवन सुखी बनाने की दिशा में अग्रसर है।

२. समय की बचत—

मानवीय हाथों से कार्य सीमित होता था तथा एक मामूली कार्य के लिये अत्याधिक समय नष्ट करना पड़ता था। अब घण्टों का काम मिनटों में तथा सैकिण्डों में होने लगा तथा समय की बचत होने लगी।

३. अत्याधिक उत्पादन—

मशीनों के कारण उत्पादन क्षेत्र में क्रान्ति हो गई। पहले जो उत्पादन की मात्रा थी, मशीनों के कारण वह १० गुनी बढ़ गई। विभिन्न वस्तुओं का निर्माण सस्ते दामों पर होने लगा।

४. यातायात एवं संदेशवाहन के साधनों में वृद्धि—

बिना यातायात एवं संदेशवाहन के बड़े पैमाने पर व्यापार, व्यवसाय नहीं किया जा सकता। एक स्थान से दूसरे स्थान पर माल लाने और ले जाने में सुविधा का होना आवश्यक है। औद्योगीकरण के कारण यातायात एवं संदेशवाहन के साधनों में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। इसका सामाजिक प्रभाव यह हुआ कि भिन्न-भिन्न संस्कृति के लोग एक दूसरों के नजदीक आने लगे तथा. उत्पादन के वितरण के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय बाजार का निर्माण हुआ। नये-नये स्थानों पर बस्तियाँ तथा नगर बने।

५. नये नगरों का बनना—

औद्योगीकरण ने नगरों के विकास में योगदान दिया। जो स्थान पहिले अत्यन्त अविकसित तथा महत्वहीन थे वह महत्वपूर्ण हो गये। उदाहरण के लिये

1. "The Industrial Revolution, the greatest transformation in the history of humanity, broke down the foundations of previous social system". [*Barns, H. E.*]

भिलाई इस्पात का कारखाना तथा Heavy Electrics Ltd. इन उद्योगों के कारण म० प्र० का महत्वहीन एवं अविकसित क्षेत्र भी आज महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर प्रगति की ओर अग्रसर हो रहा है।

६. शिक्षा का महत्व—

औद्योगीकरण के कारण समय की बचत होने लगी, थोड़े समय में अत्याधिक उत्पादन होने लगा तथा मानव को मानसिक कार्य करने का अवकाश मिलने लगा। यह समय वह यांत्रिक ज्ञान, विज्ञानों की खोज और नये-नये आविष्कारों में खर्च करने लगा। इसी कारण शिक्षा का महत्व भी दिन-प्रति-दिन बढ़ने लगा।

७. पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था—

औद्योगीकरण ने मानव को धन के पीछे दौड़ाया। पूँजीवादी लोगों की यह प्रवृति होने लगी कि अधिक से अधिक द्रव्य कैसे प्राप्त किया जा सकता है। शक्ति चालित उद्योगों को बढ़ावा देकर वे अधिक लाभ प्राप्त करना चाहते हैं इसी कारण पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था का निर्माण हुआ।

८. व्यापारिक मनोरंजन—

समय की बचत के कारण जो अवकाश मानव को मिला उसे व्यतीत किये जाने के लिये मनोरंजन व साधनों में भी विकास हुआ। चलचित्र तथा आवाज (Sound) के अविष्कार ने मनोरंजन के साधनों में वृद्धि की। विशेषत: भारत जैसे देश में आज मनोरंजन का एकमात्र साधन केवल चलचित्र रह गया है जिसके दुष्परिणामों की चर्चा हम आगे करेंगे।

९. श्रमिकों की समस्या एवं कल्याण—

औद्योगीकरण के कारण भिन्न-भिन्न उद्योगों में कार्य करने वाले श्रमिकों की एक नई समस्या खड़ी हुई तथा गन्दी बस्तियों को हटाना, शिक्षा का प्रचार, बाल कल्याण, स्वास्थ सेवायें तथा अन्य श्रम कल्याण का कार्य होने लगा। क्योंकि यदि श्रमिक चंगा न हो तो उद्योग चौपट हो जायगा।

१०. सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन—

उपरोक्त परिवर्तनों के कारण, मनुष्य भौतिकवादी बन गया, पुरानी संस्कृति में शनेः शनेः परिवर्तन हो रहा है। लोगों का सामाजिक जीवन पहले से भिन्न प्रकार का हो रहा है। परिवार के कार्य अन्य संस्थाओं ने ले लिये हैं। मानवी व्यवहार एवं प्रवृति में भी परिवर्तन दिखाई पड़ रहा है। जीवनस्तर भी औद्योगीकरण के कारण कुछ मात्रा में बढ़ने लगा है।

औद्योगीकरण के दोष :

१. गृहोद्योगों का पतन—

औद्योगीकरण के आने के साथ-साथ भारत में पहले जो छोटे-छोटे उद्योग होते थे उन्हें काफी क्षति पहुँची। गृहोद्योग बड़े पैमाने के उद्योगों के साथ प्रतिस्पर्धा करने में असमर्थ रहे। भारतीय श्रमिक की मेंहनत और योग्यता को धक्का पहुँचा।

२. दुर्घटनायें—

बड़ी-बड़ी मशीनों के प्रयोग से औद्योगिक दुर्घटनायें बढ़ गईं। मनुष्य असुरक्षित हो गया। सड़कों पर भी यातायात के साधन मोटर, ट्रक्स, साइकिलें आदि की भरमार के कारण अनेक दुर्घटनायें होना प्रारम्भ हुआ।

३. शारीरिक व्याधि—

मशीनों के प्रयोग से तथा मीलों और कारखानों के दूषित वातावरण से अनेक प्रकार के रोग व बीमारियां होना प्रारम्भ हुआ। नगरों में अत्याधिक भीड़ होने लगी तथा आवास अस्वास्थ्यकर बनते गये।

४. मकानों की समस्या—

मकानों की समस्याएँ औद्योगीकरण का ही प्रभाव है। भिन्न उद्योगों के कारण ग्रामीण जन श्रमिकों के रूप में नगरों की ओर आकर्षित हुए। स्थानाभाव ने मकानों की समस्या को जन्म दिया। कई परिवारों को अपने आवास गन्दी बस्तियों में ढूँढ़ने पड़े।

५. स्त्रियों का घर के बाहर नौकरी करना—

औद्योगीकरण ने स्त्रियों को भी दफ्तरों, कारखानों, फेक्टरियों, स्कूल तथा अस्पताल में नौकरी को आमंत्रित किया। परिवार के अनेक सदस्यों को कमाने की आवश्यकता पड़ी अन्यथा वे निश्चित आर्थिक स्तर से नहीं रह सकते। विशेषत: द्वितीय महायुद्ध के काल में तथा उसके पश्चात भिन्न-भिन्न उद्योगों में स्त्रियों को काम मिलता गया। वे घर से अनुपस्थित रहने लगीं, जिससे बच्चों की तथा परिवार की देखभाल ठीक नहीं हो पाती। माँ की अनुपस्थिति में बच्चों का विकास ठीक ढंग से नहीं हो पाता। १९५६ ई० के पश्चात अर्थात् राज्य पुनर्गठन के बाद ऐसा देखने में आया कि पति और पत्नी दोनों अलग अलग-स्थानों पर नौकरी करते हैं। अत: पृथक-पृथक रहते हैं तथा बच्चों की अवहेलना होती है। दोनों का नौकरी करना कभी-कभी परिवार को सुख से वंचित कर देता है।[1]

---

1. *Khare, P. N.* : "Economic Independence of Women" in "Indian Sociologist", March, 1961.

एक अन्य अध्ययन में, जिसमें ७५ परिवारों का अध्ययन किया गया यह देखने में आया कि परिवार के चहारदिवारी का पर्यावरण इस प्रकार हो जाता है कि बच्चों की देखभाल समुचित रूप से नहीं होती क्योंकि माताऐं बाहर रह कर कार्य करती है।[1]

औद्योगीकरण से अपराध एवं बाल-अपराध भी अधिक होते हैं।

नगरीयकरण (Urbanisation)—

नगर प्रचीन काल से बनते चले आये हैं। इनकी स्थापना का कारण उद्योग, व्यापार, राजनैतिक, भौगोलिक धार्मिक तथा अन्य कोई विशेप कारण रहा है, और होता भी है। नगरों का पर्यावरण ग्रामीण पर्यावरण से उन्नत होता है। नगरीय समाज सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से उन्नत, विकसित और ग्रामीण समाज से भिन्न होता है। यहां जीवन के लिए सुख-सुविधायें, आनन्द, सुरक्षा, तथा प्रत्येक प्रकार के विकास के साधन प्राप्त होते हैं। इनके सामाजिक प्रभावों या सामाजिक सम्बन्धों के रूप में नगरीय जीवन जुड़ा होता है जो नगरीयकरण की श्रृङ्खला में जाना जाता है। नगरीय जीवन यहाँ की सुख सुविधाओं और चमक-दमक से प्रभावित होता है। ग्रामीण जीवन इस ओर प्रभावित होता है।

नगरीयकरण के प्रभाव और परिणाम (Effects and Resultant of Urbanisation) :

१. **सामाजिक उन्नत पर्यावरण—**

नगरों में ग्रामों की भांति अन्धविश्वास, रूढ़िवाद और परम्परा का किसी प्रकार का प्रचलन नहीं दीखता है। यहाँ जीवन आधुनिक वैज्ञानिक ढंग से व्यतीत होता है। यत्र-तत्र पर्यावरण आधुनिक विचारों से सम्पन्न रहता है।

२. **आनन्दमय, सुविधाजनक जीवन—**

नगरों में मनुष्य को कम मेहनत और आरामदायक जीवन के साधन प्राप्त होते हैं। इसके प्रतिफल स्वरूप अल्प-श्रम से लाभ अधिक प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त यहाँ जीवन की सभी सुविधायें आसानी से प्राप्त हो जाती हैं। इससे जीवन आनन्दमय और सुविधाजनक व्यतीत होता हैं।

३. **रक्षा और सुरक्षापूर्ण जीवन—**

प्राय: ग्रामीण जीवन असुरक्षित होता है और यह बहुत कुछ ठीक भी है। दूसरी ओर यही जीवन नगरों में चोर, डाकू तथा अन्य सामाजिक बुराइयों से

1. *Ibid.*, "Socio-Economic Analysis or Families of Children attending Montessori Schools", 1957.

मुक्त होता है। जीवन रक्षा के लिये अनेकों विभागों द्वारा कार्य होता रहता है, सुरक्षा पुलिस, अदालत आदि होती हैं। इन्हीं रक्षा और सुरक्षापूर्ण परिस्थिति के कारण अधिकतर परिवार नगरों का जीवन पसन्द करते हैं।

४. शिक्षा, प्रशिक्षा और विशेषीकरण की सुविधा—

नगरों में व्यक्ति विकास की सभी परिस्थितियाँ पाई जाती हैं ; वह जिस किसी क्षेत्र में जाना चाहता है उसी क्षेत्र की उन्नति कर सकता है। यहाँ सभी प्रकार की शिक्षा की प्राप्ति प्रशिक्षण की सुविधा होती है जिनके आधार पर वह ऐच्छिक दिशा व व्यवसाय में विशेषीकरण प्राप्त कर सकता है। यह बातें ग्रामों में सुनने को भी नहीं मिलती हैं।

५. स्त्री और बच्चों को उन्नति के खुले साधन प्राप्त—

स्त्री और बच्चों को उन्नति के अधिकार प्रदान की दृष्टि से ग्रामीण जीवन बच्चों का हत्यारा और स्त्रियों का गला घोंटने वाला है। दूसरी ओर नगरीय जीवन उन्हें उन्नति के खुले साधन प्रदान करता है। यहाँ इनके कल्याण के लिए विभिन्न संस्थायें कार्य करती हैं। कई क्लब, पार्क, मनोरंजन स्थान, स्कूल, पुस्तकालय, वाचनालय, सलाहदायक और भूमि निवारक केन्द्र आदि होते हैं। नगरीय समाज में स्त्री पुरुष की भाँति कमा सकती है, रह सकती है, तथा जीवन समस्त आवश्यकताओं की सन्तुष्टि में स्वतन्त्रता से काम भी ले सकती है। इस दृष्टि से नगरीयकरण पर्याप्त लाभदायक सिद्ध हुआ है।

६. जीवन स्तर की उन्नति—

नगरीय जीवन में आय वृद्धि के सैकड़ों साधन प्राप्त हो सकते हैं तथा जीवन की आवश्यक सभी वस्तुओं की प्राप्ति भी आसानी से हो जाती है जिनके उपभोग का मानव आदी हो जाता है। यह सब कार्य वह नगरों में ही कर सकता है क्योंकि यहाँ उन्नत संदेशवाहन और यातायात के साधन, रोग निवारण और चिकित्सा की सुविधा, उच्च से उच्च शिक्षा, तथा जीवन की प्रत्येक आवश्यकता पूर्ति की वस्तु व साधन प्राप्त होते हैं। इससे नगरीय जीवन स्वत: ही उन्नतिशील हो जाता है।

नगरीयकरण के दोष।

नगरीयकरण के उक्त कारण और प्रभावों के अतिरिक्त कुछ भारी दोष भी हैं :—

१. बनावटी और ढोंगी जीवन—

नगरीय जीवन आज पूर्णत: कृत्रिमता को लिये हुए तथा प्रकृति से सम्बन्ध

विच्छेद करता हुआ जारहा है। जीवन चारों मूलभूत (भोजन, निवास, रक्षा, और काम) तथा अन्य साधारण आवश्यकताओं में आज पर्याप्त कृत्रिमता आती जा रही है प्रत्येक भौतिकता और यान्त्रिकता से प्रभावित है। उनमें स्वाभाविकता-सादगी तथा प्राकृतिकता के दर्शन करना तक दुर्लभ होता जारहा है। इसलिए नगरीय जीवन दवाओं पर रहने वाला, बनावट की खुराक लेने वाला तथा ढोंगी आवरण से ढका हुआ कहा जाना है।

२. जनसख्या और उससे सम्बन्धित समस्याएँ—

नगरों में प्राय: जनसंख्या और जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है। इससे घरों में भीड़-भाड़ और इससे उत्पन्न असुविधायें, मकानों की समस्या, गंदी बस्तियाँ, बेरोजगारी एवं गरीबी और इनसे सम्बन्धित समस्यायें जैसे भिक्षावृत्ति, वेश्यावृत्ति, अपराध, बालापराध आदि सैकड़ों दोष पैदा हो जाते हैं और ये सब नगरीय जीवन में बहुत जल्दी पनप जाते हैं।

३. सामाजिक और नैतिक पतन—

नगरीय जीवन भावना, उत्तेजना और कृत्रिम जीवन होता है। इस कारण व्यक्तिवादी दृष्टिकोण हर बात मे प्रधान होता है। इसी का परिणाम होता है कि मनुष्य अपनी सुविधा के लिए अच्छा बुरा ध्यान में नहीं लाकर ही काम को करना उचित समझता है। इससे चाहे उसका सामाजिक और नैतिक पतन ही क्यों न होता हो।

४. अधार्मिकता में वृद्धि और आदर्शों का पतन—

नगरीय जीवन भौतिकवादी होता है। यहाँ धर्म नाम की कोई चीज नही मानी जाती है। यहाँ तो तर्क, बुद्धि, और तथ्य प्रधान होते हैं। यहाँ धर्म के वही आदर्श श्रेष्ठ हैं जिनसे अपना उल्लू सीधा हो जाय। लेकिन इससे यह नहीं समझना चाहिए कि नगरों में कोई धर्म होता ही नहीं है। यहाँ धर्म अनेकता में होता है, एकता में नहीं। ग्रामीण समाज के धर्म की एकता और आदर्शों की मान्यता यहाँ नहीं मिलती है।

उक्त नगरीयकरण के दोष जिन्हें समझा जाता है वे वास्तव में नगरीय सामाजिक दोष हैं जिन्हें आसानी से दूर किया जा सकता है।

औद्योगीकरण और नगरीयकरण के दोष निवारण के उपाय :

१. **सुआयोजन**—

नगर निर्माण पूर्णरूपेण सुआयोजित हो। निवास सुविधा, यातायात, मंडी, बाजार, कारखाने आदि का जमाव इस ढंग से किया जाय कि एक दूसरे से रुकावट न हो। बस्तियों का जमाव सामाजिक व आर्थिक स्तर पर उचित ढंग से हो। कारखाने नगर के वाहर हों जहाँ रेल, मोटर आदि की सुविधा हो।

२. **उद्योग**—

जहाँ तक हो सके उद्योगों का विकेन्द्रीकरण किया जाय, कुटीर उद्योगों का विकास किया जाय तथा ग्रामोद्योगों को प्रोत्साहित किया जाय।

३. **श्रमिक कानून और नागरिक आदर्श**—

कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों के वेतन, काम के घण्टे, काम करने की दशायें, सामाजिक रक्षा व सुरक्षा आदि के सम्बन्ध में उचित कानूनों का निर्माण कर दिया जाय तथा उनका ईमानदारी से पालन किया जाय। इसी प्रकार नगरीय समाज को विज्ञान की चकाचौंध में मानवता के आदर्शों को नहीं भूलना चाहिये। शरीर सुविधा के लिये कृत्रिमता से लाभ उठाया जाय किन्तु विलासता की ओर नहीं बढ़ना चाहिये। धर्म का चाहे पालन न भी करें किन्तु मानवता के नैतिक आदर्शों का सदा ध्यान रखें।

४. **स्वस्थ मनोरंजन की व्यवस्था**—

दिन भर के व्यस्त जीवन का नीरसपन स्वस्थ मनोरंजन के साधनों से दूर किया जाय। आज की फिल्म कम्पनियों को भी चाहिये कि वे उन्माद, अश्लीलवाद सामाजिक विघटन पैदा करने वाली फिल्मों का निर्माण न करें। ऐसी फिल्मों को बनायें जिससे बुद्धिबल पुष्ट, विकसित व उपयोगी बने।

इस प्रकार से यदि सच्चे ढंग से उक्त थोड़ी सी बातों का पालन किया गया तो औद्योगीकरण व नगरीयकरण के दुष्परिणाम सुपरिणाम में आसानी से बदल सकते हैं।

प्रकरण का सारांश

१. औद्योगीकरण।

२. औद्योगीकरण के प्रभाव एवं परिणाम :

(१) मानव शक्तिशाली हो गया।

(२) समय की बचत।

(३) अत्यधिक उत्पादन ।
(४) यातायात एवं संदेशवाहन के साधनों में उन्नति ।
(५) नये नगरों का बनना ।
(६) शिक्षा का महत्व ।
(७) पूँजीवादी अर्थव्यवस्था ।
(८) व्यापारिक मनोरंजन ।
(९) श्रमिकों की समस्या एवं कल्याण ।
(१०) सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन ।

३. औद्योगीकरण के दोष :
(१) गृह उद्योगों का पतन ।
(२) दुर्घटनायें ।
(३) शारीरिक व्याधि ।
(४) मकानों की समस्या ।
(५) स्त्रियों का घर के बाहर नौकरी करना ।

४. नगरीयकरण ।

५. नगरीयकरण के प्रभाव और परिणाम :
(१) सामाजिक उन्नत पर्यावरण ।
(२) आनन्दमय, सुविधाजनक जीवन ।
(३) रक्षा और सुरक्षापूर्ण जीवन ।
(४) शिक्षा, प्रशिक्षा और विशेषीकरण की सुविधा ।
(५) स्त्री और बच्चों को उन्नति के खुले साधन प्राप्त ।
(६) जीवन स्तर की उन्नति ।

६. नगरीयकरण के दोष :
(१) बनावटी और ढोंगी जीवन ।
(२) जनसंख्या और उससे सम्बन्धित समस्यायें ।
(३) सामाजिक और नैतिक पतन ।
(४) अधार्मिकता में वृद्धि और आदर्शों का पतन ।

७. औद्योगीकरण और नगरीयकरण के दोष निवारण के उपाय:
(१) सुआयोजन ।
(२) उद्योग ।
(३) श्रमिक कानून और नगरीय आदर्श ।
(४) स्वस्थ मनोरंजन की व्यवस्था ।

अध्याय ५

नगरीय और ग्रामीण संसार

Urban and Rural World

प्रस्तुत पुस्तक यद्यपि नगरीय समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से नगरीय जन और जीवन का एक परिचय है किन्तु समय-समय पर दोनों प्रकार के सामाजिक जीवन की तुलना में अनेकों शंकायें उठती हैं। इन समस्याओं को ध्यान में रखते हुए यहाँ पर नगरीय और ग्रामीण संसार का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

नगरीय और ग्रामीण संसार का तुलनात्मक अध्ययन कभी-कभी समुदाय के आधार पर, कहीं जनसंख्या के आधार पर, कहीं प्रशासन पद्धति और प्रकार के आधार पर, आदि-आदि किया जाता है। लेकिन ये सब समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से अपूर्ण हैं। वास्तव में दोनों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार सभ्यता और संस्कृति सम्बन्धी तत्व हैं जो उनकी ऊपरी आकार की भाँति केवल मात्र आभास ही नहीं कराते हैं वरन् वास्तविक समाजशास्त्रीय आधार प्रस्तुत करते हैं। इतना अवश्य है कि कोई एक क्षेत्र न तो ग्रामीण है न नगरीय, वरन् किसी एक तत्व की उसमें प्रधानता होती है। उसी के आधार पर यह कहा जाता है कि अमुक क्षेत्र नगरीय है और अमुक ग्रामीण।

नगरीय और ग्रामीण संसार की तुलना में कठिनाइयाँ :

१. स्पष्टीकरण का अभाव—

लम्बे चौड़े तथा विस्तृत अध्ययनों[1] के बाद भी विद्वान सार्वभौमिक रूप से नगर और ग्राम की परिभाषा देने में असमर्थ रहे हैं। उनकी परिभाषाओं के आधार भी भिन्न-भिन्न रहे हैं। किसी ने जनसंख्या के अमुक आकार को बताया है, किसी ने अमुक व्यवसाय को प्रधानता दी है तो किसी ने कुछ बदल कर। अतः यह कहना कठिन हो जाता है कि अमुक क्षेत्र नगर है या अमुक ग्राम।

---

१. ग्रामीण संसार के विस्तृत अध्ययन के लिये लेखक की "ग्रामीण समाज-शास्त्र" पुस्तक पढ़े।

२. नगरीय और ग्रामीण अंशों में भिन्नता—

नगर और ग्राम दोनों की ओर से तनिक आँख फेरने पर मस्तिष्क में आये रूप पर विचार करें तो हमें आभास होगा कि एक ओर तो महानगर, नगर, और कस्बा है और दूसरी ओर संकीर्ण ग्राम, या समूह ग्राम या बड़े ग्राम, पंक्तिनुमा ग्राम या साधारण ग्राम, तथा हेमलेट या यत्र-तत्र खेतों पर दिखाई देने वाले झोपड़ीनुमा ग्राम। इतने पर भी इनके अंशों में पूर्ण भिन्नता कहीं भी देखने को नहीं मिलती है। वरन् नगर में ग्राम और ग्राम में नगर के कुछ न कुछ अंश सदा पाये जाते है। इस प्रकार पूर्ण भिन्नता के अभाव में अंशों की भिन्नता तुलना में कठिनाई पैदा करती है।

३. पर्यावरण की भिन्नता—

ग्रामों में जहाँ पर्यावरण एकसा होता है वहाँ नगरों में भिन्न होता है। अर्थात् ग्रामों में विभिन्न जाति, धर्म, एवं संप्रदाय के व्यक्ति विभिन्न पर्यावरणों का उनके व्यवसाय, रहन-सहन, आचार-विचार आदि बातों में नगरों में भिन्नता होती है। इन सब कारणों के कारण दोनों की तुलना में पर्याप्त कठिनाई होती है।

४. नगर और ग्राम की परिवर्तनशील प्रकृति—

भारतीय संस्कृति ग्रामीण संस्कृति के निकट है। आधुनिक समय में विज्ञान का प्रभाव अधिक है। कहने का तात्पर्य है कि नगर विकसित विज्ञान से सने रहते हैं तो ग्राम अपनी संस्कृति से। नगरों का ग्रामों पर प्रभाव पड़ता रहता है। नगरों मे ग्रामीण सांस्कृतिक तत्वों का प्रवेश अर्थात् दोनों पर आपस में एक दूसरे का प्रभाव पड़ता रहता है। इससे इनकी प्रकृति में परिवर्तन होता रहता है। स्वरूपों में भिन्नता आती रहती है। अतः तुलना में कठिनाई होना स्वाभाविक है।

इसी प्रकार की अनेकों कठिनाइयाँ हैं जो नगरीय और ग्रामीण संसार की तुलना में रुकावट पैदा करती हैं।

नगरीय और ग्रामीण संसार की तुलना एक दृष्टि से—

ग्रामीण और नगरीय संसार को एक रेखा खींचकर विभाजित करना बहुत कठिन है, किन्तु इस पर भी यह कभी नही कहा जा सकता है कि उनमें भिन्नता होती ही नहीं है। होती है तो अनेक तत्वों का मिश्रित रूप होता है। तुलना में हम उसके प्रधान तत्व को देखते हैं। इससे यह कभी नहीं हो सकता है कि उसमें शुद्ध वही विशेषता है। यहाँ पर तुलना में प्रधान तत्व को ही स्थान दिया जायगा। लेकिन फिर भी यह नहीं समझना चाहिए कि यह जीवन की शुद्धता है। वास्तव में इस

प्रकार की शुद्धता मिलना दोनों में से किसी भी समाज में असंभव है। हम अब नगरीय और ग्रामीण संसार में निम्नलिखित तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हैं।

सोरोकिन और जिमरमैन के अनुसार तुलना के प्रमुख तत्व—

(१) व्यवसाय (Occupation).
(२) पर्यावरण (Environment).
(३) समुदाय का आकार (Size of Community).
(४) जनसंख्या का घनत्व (Density of Population).
(५) जनसंख्या की सजातीयता और विजातीयता (Homogeneity and Hetrogeneity of Population).
(६) सामाजिक विभेदीकरण और स्तरण (Social Differentiation and Stratification).
(७) सामाजिक गतिशीलता (Social Mobility).
(८) अन्तःक्रिया-पद्धति (System of Social Inter-action).

आधुनिक समय में परिवर्तन तेजी से होरहा है। ग्रामीण तथा नगरीय परिवारों के प्रतिमानों में भी परिवर्तन होरहा है। अतः वर्तमान परिस्थिति के आधार पर निम्नलिखित तत्वों को प्रमुख मानकर तुलना की गई है।

उप आधार	ग्रामीण समाज	नगरीय समाज
१. परिवार	ग्रामों में संयुक्त परिवार होते हैं। पिता परिवार का प्रधान होता है। सदस्यों के सम्बन्ध घनिष्ट होते हैं। परिवार का कठोर नियन्त्रण होता है। साधारणतः कोई सदस्यता नहीं छोड़ सकता है। कृषि के कारण परिवार के प्रत्येक सदस्य का महत्व बढ़ जाता है।	नगरों में संयुक्त परिवार तो होते हैं किन्तु उनका झुकाव एकांकी परिवार की ओर होता है। व्यक्ति का महत्व होता है। परिवार प्रेम और वात्सल्य पर टिके होते हैं। परिवार का कार्य प्रायः अन्य संस्थाएँ करती हैं। सदस्यों के सम्बन्ध ढीले होते हैं। स्त्रियों का सामाजिक स्तर अधिक होता है।

२—विवाह	ग्रामों में विवाह दो व्यक्तियों में न होकर परिवारों में होता है। जीवन साथी चुनने का कार्य परिवार के बड़े बूढ़े करते हैं। विवाह में परम्परा का पालन आवश्यक है। बाल विवाह प्रायः होते हैं। साधारणतः स्त्रियों को तो विवाह-विच्छेद का अधिकार होता ही नहीं है ; पुरुष फिर भी समय आने पर विवाह-विच्छेद कर सकता है।	नगरों में विवाह दो व्यक्तियों का आपसी समझौता है। यद्यपि कहीं कहीं यह कार्य माता पिता भी तय करते हैं। प्रेम और रोमांस को घृणा की दृष्टि से नहीं देखा जाता है। विवाह मन पसन्द तथा स्तर के अनुसार होते हैं। स्त्री पुरुष दोनों को विवाह-विच्छेद का अधिकार होता है।
३—स्त्रियों की स्थिति	ग्रामीण समाज में प्रायः समस्त कार्य मुखिया के हाथों में होता है। अन्य सदस्य केवल कार्य करने वाले होते हैं। कृषि में पुरुष को प्रधानता होती है। स्त्रियों का सामाजिक और आर्थिक स्तर निम्न होता है। उनकी स्थिति दासी से किसी प्रकार निम्न नहीं होती है। उन्हें किसी प्रकार की स्वतंत्रता नहीं होती है। सदा सासों की घुड़की सुननी पड़ती है।	नगरों में स्त्रियों की स्थिति अच्छी होती है। उन्हें पुरुष के समान ही समाज में स्थान होता है। वे स्वतन्त्रतापूर्वक आ जा सकती हैं तथा व्यवसाय भी कर सकती हैं। उनकी सामाजिक आर्थिक स्थिति ठीक होती है। विवाह-विच्छेद और पुनर्विवाह के स्वतन्त्रतापूर्वक अधिकार होते हैं।
४—पड़ौस	ग्रामों में पड़ौस प्रायः परिवार के विस्तृत रूप में व्यवहार व निवास करते हैं। सदा एक दूसरे की सहायता के लिये तैयार रहते हैं। आपस में तो परिचित होते ही हैं किन्तु गांव के कुत्ते बिल्लियों को भी पहचानते हैं। उनकी समस्याएं भी समान होती हैं। प्रायः सब का प्रधान कृषि व्यवसाय होता है किन्तु वे अपनी-अपनी जाति के कार्य भी ग्रामों में करते हैं।	नगरों में जनसंख्या अधिक होने से वे अपने पड़ौसियों से भी अपरिचित होते हैं। पड़ौस में विभिन्न संस्कृति, व्यवसाय व सभ्यता के लोग होते हैं। जीवन मशीन की भाँति होता है। आपस में सुख-दुःख में कोई किसी की सहायता प्रायः नहीं करते है। मौहल्ले की रक्षा के लिये पुलिस तथा सुधार की देखभाल के लिये मोहल्ला कमेटियाँ होती हैं।
५—'अहं' की भावना	ग्रामों में समुदाय छोटा और संगठित होने से सम्बन्धों	नगरों में समुदाय की गतिशीलता के कारण 'हम'

	की घनिष्ठता होती है। एक का दु:ख सबका दु:ख समझा जाता है। उनमें 'मैं' के स्थान पर 'हम' की भावना अर्थात सामुदायिक भावना गहरी होती है। समुदाय का अनुशासन कठोर होता है। पंचायत संगठन महत्वपूर्ण होता है।	की भावना का अभाव होता है। सदा 'हम' के स्थान पर 'मैं' का स्वार्थ ही देखा जाता है। समुदाय के सम्बन्ध भी ढीले होते हैं। अनुशासन में कोई रहना भी नहीं चाहता है।
६—सामाजिक स्तरण	ग्रामों में सामाजिक स्तरण वंश परम्परा से प्रभावित होता है। जाति प्रथा कठोर रूप से पायी जाती है। केवल जमीदार, किसान, और मजदूर वर्ग पाया जाता है।	नगरों मे वर्ग विषमता प्रधान रूप से होती है। प्राय: आर्थिक आधार पर वर्ग बने होते हैं। यहाँ धनी से धनी और दरिद्र से दरिद्र वर्ग भी पाये जाते है। वंश परम्परा पर प्राय: ध्यान नहीं दिया जाता है।

२. सामाजिक नियंत्रण (Social Control)

उपआधार	ग्रामीण	नगरीय
	ग्रामों में परिवार और समुदाय शक्तिशाली स्थिति में होते है। परिवार में मुखिया का नियन्त्रण सीमा पर होता है। परिवार से बहिष्कृत होना मानो समुदाय में मृत्यु होना है। रीति-रिवाज, रूढ़ियों तथा परम्पराओं का नियन्त्रण कठोर होता है। धर्म के अनुसार जीवन बिताया जाता है तथा ईश्वरीय प्रकोप का भय रहता है। अर्थात सभी दृष्टियों से प्राथमिक नियन्त्रण प्रधान होता है।	नगरो में सामाजिक नियन्त्रण एक समस्या है। परिवार का नियन्त्रण तो एक असम्भव बात है। नगरों में परिचित और अपरिचित अपरिचितों का नियन्त्रण शक्ति जब चाहे तब समाप्त कर सकता है किन्तु अपरिचित अर्थात विधियाँ, कानून, पुलिस, कचहरी, गुप्तचर, बन्दीगृह आदि का भय सदा बना रहता है अर्थात द्वैतियक नियन्त्रण होता है। व्यक्तिगत व्यवहार में पर्याप्त स्वतन्त्रता होती है। नगरों में विभिन्न संस्कृतियों के लोगों के रहने के कारण उनमें व्यवहारों की एकता हो भी नहीं पाती है।

३. सामाजिक सम्बन्ध (Social Relationship)

उपआधार	ग्रामीण	नगरीय
१—वैयक्तिक सम्बन्ध	ग्रामों में कम जनसंख्या व्यवसाय की समानता के कारण एक दूसरे के सम्पर्क में आते रहने से आपस में परिचित होते हैं। इस कारण ग्रामों में वैयक्तिक सम्बन्ध पाया जाता है।	नगरों में जनसंख्या की अधिकता, व्यवसाय भिन्नता तथा द्राव्यिक प्रधानता होने के कारण आपस में वैयक्तिक सम्बन्ध हो ही नहीं पाते हैं। यहाँ यन्त्रीकरण के कारण-व्यक्ति का जीवन भी यन्त्र वत् ही प्रायः हो जाता है जिसे अपने कार्य के सिवा समय मिल ही नहीं पाता है। पदों की प्रधानता होती है। सम्बन्धों में पर्याप्त बनावट होती है। इन सब कारणों से नगरीय समाज में वैयक्तिक सम्बन्धों का अभाव और द्वैतियक सम्बन्धों की प्रधानता होती है।
२—सामाजिक समूह	ग्राम प्राथमिक समूह जैसे परिवार, प्रजाति, मित्र मण्डली आदि के केन्द्र होते हैं। अधिकांश व्यक्तियों का समय इन्हीं में व्यतीत होता है। उनकी समस्त आवश्यकतायें इन्हीं में पूर्ण हो जाती हैं।	नगरों में प्राथमिक समूह होते हैं, किन्तु प्रभाव की दृष्टि से न्यून, यहाँ व्यक्ति के अनेक संगठन, समिति तथा समूह होते हैं। व्यक्ति चाहे जितनों का सदस्य बन सकता है तथा छूट सकता है। यह बात उसकी आवश्यकताओं के आधार पर निर्भर है। इनके बिना उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति होना असम्भव हो जाता है।

४. सामाजिक अन्तर क्रियाएं (Social Interaction)

उपआधार	ग्रामीण	नगरीय
१—सम्बन्ध	ग्रामीण सामाजिक सम्बन्ध सीमित क्षेत्र के कारण विकसित	नगरों में टेलिफोन, समाचार पत्र, रेडियो आदि सामा-

	नहीं होते हैं। वे अधिक स्थायीपन लिये होते हैं। इस कारण समाज अप्रगतिशील एवं कूपमंडूकता के प्रभाव से प्रभावित होता है।	जिक सम्बन्ध स्थापित के पर्याप्त साधनों की उपलब्धि और विभिन्न संस्कृति के व्यक्तियों के सम्पर्क में आते रहने के कारण सामाजिक संबंधों की अधिकता सीमा पर होती है। व्यक्ति को एक मशीन के समान कार्य पूरे करने पड़ने से उसका सम्बन्ध अप्रत्यक्ष एवं अवैयक्तिक होता है। इस कारण समाज प्रगति की ओर नवीन संबंधों से परिचित होता है।
२—सहयोग	ग्राम व्यवस्थापन ही सहयोग का स्वयं उदाहरण है। यहाँ प्रत्येक कार्य बिना सहयोग के हो ही नहीं सकता। यह सहयोग परिवार में तो प्रधान रूप से होता ही है किन्तु ग्राम तक विकसित होता है।	नगरीय जीवन एक दूसरे पर निर्भर होता है। अप्रत्यक्ष रूप से वे सहयोग के आधार पर होते हैं। श्रम विभाजन और विशेषीकरण होते हुए भी अप्रत्यक्ष रूप से एक दूसरे के सहयोग बिना अधूरा है। व्यक्तिगत स्वार्थों की चिंता प्रधान चीज है।
३—प्रतिस्पर्धा	ग्रामों में सामाजिक व्यवस्था वंश परम्परा तथा परिवार के अनुसार संचालित होती है। लोग अपनी बिरादरी व सामाजिक स्तर के अनुसार अपने कार्यों में संलग्न रहते हैं। उनमें प्रतिस्पर्धा का भयंकर रूप नहीं दीखता है।	नगर प्रतिस्पर्धा के अखाड़े होते हैं। लोग सदा समाज में आगे आने के लिये एक दूसरे के प्रतिद्वन्दी बने रहते हैं। वे वंश, परिवार आदि की परवाह न कर समाज में अपनी स्थिति कायम करने की दौड़ सदा दौड़ते रहते हैं।
४—संघर्ष	ग्रामों में संघर्ष का प्रत्यक्ष रूप होता है। यह संघर्ष छोटी छोटी बातों पर उठ खड़ा होता है। जो व्यक्ति-व्यक्ति, जाति-जाति तक ही सीमित नहीं रहता वरन् ग्राम-ग्राम तक बढ़ जाता है। संघर्ष का प्रधान विषय	नगरों में संघर्ष का अप्रत्यक्ष रूप होता है। जिस का अन्त होना असम्भव ही कहना चाहिये। जो जाली दस्तावेज जारी करने, कोर्टबाजी, अनशन, दंगे, हड़ताल, तालाबन्दी तथा मारकाट के

	प्राय: भूमि या उससे संबंधित ही कोई विषय हुआ करता है। ग्रामों में संघर्ष शीघ्र सीमा पर पहुँच जाता है।	रूप में पाया जाता है। यहाँ संघर्ष का प्राय: प्रधान विषय मुद्रा संबंधी होता है।
५—अनुकूलन	ग्रामीण भावना, विचार और उद्वेग के कारण होते हैं। वे सामाजिक परिवर्तन तथा परिस्थिति के अनुसार अनुकूलन करने में असमर्थ होते हैं। कारण कि उनमें सामाजिक सहिष्णुता का अभाव होता है। इस कारण उनमें व्यक्तिगत और सामाजिक विघटन भी शीघ्र हो जाते हैं।	नगरीय समाज में सामाजिक सहिष्णुता की अधिकता के कारण सामाजिक परिवर्तन और परिस्थिति के अनुसार वे शीघ्र अनुकूलन कर लिया करते हैं।
६—एकीकरण	ग्रामों में सांस्कृतिक एकता और सामाजिक संबंधों की अप्रधानता के कारण एकीकरण की आवश्यकता ही नहीं होती है। इस कारण ग्रामीण समाज में एकीकरण की प्रक्रिया की गति अति मंद होती है।	नगरों में सदा एकीकरण की प्रक्रिया होती है। यहाँ पर्यावरण और सांस्कृतिक विभिन्नता तथा सामाजिक सम्बन्धों की प्रधानता के कारण एकीकरण की प्रक्रिया सदा चलती रहती है जो बाद में अनुरूपता की दिशा को पहुँच जाती है।

५. सामाजिक दृष्टिकोण (Social Attitudes)

ग्रामों और नगरों में पर्यावरण की भिन्नता पायी जाती है। पर्यावरण चार प्रकार का, भौतिक, प्राणीशास्त्रीय, सामाजिक और समाजोपरि होता है। यह पर्यावरण ग्रामीण संसार में अभौतिक तथा नगरीय में भौतिकता से अधिक आच्छादित रहता है। ग्रामीण और नगरीय संसार का भेद इसी आधार पर अवलंबित हो सामाजिक दृष्टिकोण पर प्रभाव डालता है।

उपआधार	ग्रामीण	नगरीय
१. प्रगतिशीलता	ग्रामीण संस्कृति रूढ़िवादी होती है। ग्रामीण परम्परा और रूढ़िवादिता के कट्टर अनुयायी होते हैं। वे समाज में परिवर्तन का कभी स्वागत नहीं करते	नगरीय समाज प्रगतिशील होता है। वहाँ सदा प्राचीनता में सुधार होता रहता है, और नवीनता को ग्रहण करते रहते हैं। अर्थात् नगर में

	जब तक वे स्वयं मजबूर नहीं हो जायें। इस प्रकार ग्रामीण संसार प्रगतिशीलता के विरुद्ध होता है। अर्थात् समाज के वर्तमान सामाजिक परिवर्तन को अपनी शक्ति भर स्वीकार नहीं करता है।	सामाजिक परिवर्तन का सदा स्वागत किया जाता है। एक प्रकार से नगरीय संसार सामाजिक परिवर्तन का अग्रेता होता है।
२. राजनैतिक चेतना	ग्रामीण राजनैतिक चेतना के प्रति उदासीन होते हैं। यह बात परिवार की विचार धारा पर भी निर्भर होती है। वे प्रायः भूमि, कृषि आदि उनके मतलब की राजनीतिक पार्टी का साथ देने के लिये बहुत जल्दी तैयार हो जाते हैं।	नगरों में राजनीति का पर्याप्त विकसित रूप मिलता है। यहाँ अनेकों राजनैतिक दल कार्य करते हैं जिनके अपने सिद्धान्त नियम होते हैं। यहाँ राजनीति का सक्रिय रूप मिलता है।
३. सामाजिक सहिष्णुता	ग्रामीण समाज में सामाजिक सहिष्णुता का अभाव होता है। कारण कि उनका संपर्क अपने से भिन्न परिवारों, प्रजाति, धर्म, संप्रदाय तथा राष्ट्र से नहीं होता है। उनकी संस्कृति संकुचित होती है।	वर्तमान सभ्यता में सामाजिक सहिष्णुता एक महान गुण है। नगरों में विभिन्न संस्कृति के लोग रहते हैं। आपस में मिलते जुलते हैं। एक दूसरे की संस्कृति का प्रभाव पड़ता है। वे आपस में इसका विरोध नहीं करते हैं। अतः स्पष्ट है कि उनमें सामाजिक सहिष्णुता होती है।
४—धर्म तथा आधार	ग्रामीण जीवन प्रकृति से संबंध रखते हैं। उन्हें अनेक प्राकृतिक प्रकोपो का सामना करना पड़ता है। इस कारण उन्हें ईश्वरीय सत्ता का सदा भय बना रहता है। अज्ञान के कारण अदृश्य जगत को प्रधानता देते हैं। चरित्र की पवित्रता उनका प्रधान जीवन का लक्ष्य होता है। वे धर्म के नाम पर सब कुछ करने को सदा तैयार रहते हैं। इस प्रकार धर्म और आचार ग्रामीण समाज की सबसे बड़ी विशेषता है।	नगरीय समाज विज्ञान की प्रगति के अनुसार चल ईश्वरीय सत्ता में विश्वास न कर विवेक को प्रधानता देता है। चरित्र की पवित्रता के बन्धन भी ढीले होते हैं। यहाँ वैश्या नामक व्यवसाय भी बुरा नहीं समझा जाता है। यहाँ धर्म का अर्थ अपनी संतुष्टि से समझा जाता है चाहे वह संतुष्टि अच्छे या बुरे कैसे भी मिलती हो। इस प्रकार नगरों में धर्म और आचार का किसी

		प्रकार का कमाव नहीं होता है। लेकिन अब कुछ लोग इस ओर मुड़ने लगे है।
५—भाग्यवादिता	ग्रामीण समाज का संबध कृषि से होता है और कृषि प्रकृति की कृपा पर निर्भर होती है। किसानों के प्रयत्न प्राकृतिक प्रकोपों के सामने झूठे पड़ जाते हैं। अब उन्हें भाग्य की दुहाई दे कर रह जाना पडता है। इससे उनकी भाग्यवादिता विकसित होते होते प्रत्येक बात में यही भावना घर कर जाती है। किसानों में भाग्यवादिता जड़ पकड़ जाती है। कर्म को दूसरा स्थान दिया जाता है।	नगरीय समाज में विकसित विज्ञान के प्रभाव के कारण प्राकृतिक विपदाओं का अभाव नही पड जाता है। यहां कृत्रिमता का जोर होता है। लोग शक्ति एवं बुद्धि के प्रभावों को देखने रहने से कर्म को प्रथम स्थान देने लग जाते हैं। यहां भाग्यवादिता के दर्शन दुर्लभ हो जाते हैं। अपने प्रति विश्वास बढ़ता जाता है।
६—कृत्रिमता	ग्रामीण सजीव प्रकृति के बीच रहते हैं। उनका जीवन सरल, सत्य और स्वाभाविक होता है। नैतिकता के नियम उनके जीवन के अंग होते हैं। उनका रहन-सहन, खान-पान, पहिनावा, निवास आदि सब सादा प्राकृतिक होता है।	नगरीय सभ्यता कृत्रिमता का पर्यायी है। जीवन का हर पहलू कृत्रिमता से प्रभावित होता है। इस कृत्रिमता के आगे अनेकों साज सज्जा से बोझिल होकर मनुष्य बनावटी पुतला बन जाता है।

६. सामाजिक गतिशीलता

	ग्रामीण समाज मे पारिवारिक, विरादरीय तथा सामाजिक बंधन कोठर होता है। कोई एक प्रजाति दूसरी प्रजाति का धर्म, व्यवसाय ग्रहण नहीं कर सकती। उसे अपनी प्रजाति के के स्तरण के समान ही रहना पड़ता है। इस कारण ग्रामीण समाज सामाजिक गतिशीलता के विरोधी होते हैं।	नगरों मे एक समाज के व्यक्ति दूसरे समाज का धर्म, व्यवसाय व संस्कृति आराम से ग्रहण कर सकता है। वह अपने देश तक को छोड़कर दूसरे देश में जा सकता है। इस स्वच्छन्दता के कारण ही नगरीय समाज में गतिशीलता तीव्र रूप से पायी जाती है।

७. सामाजिक स्थायित्व (Social Solidarity)

	ग्रामीण समाज के उद्देश्य, लक्ष्य, सिद्धान्त, नियम, उपनियम, आचार-विचार, व्यवहार, संस्कृति, सभ्यता आदि लगभग समान होते हैं। इस कारण उनमें सदा एकता के दर्शन होते हैं। इन सब बातों का प्रभाव यह पड़ता है कि सामाजिक स्थायित्व बना रहता है।	नगरीय समाज में उद्देश्य, नियम, व्यवहार, संस्कृति और सभ्यता में भिन्नता होती है। उनका सम्बन्ध औपचारिक तथा संविदापूर्ण होता है। यहाँ सामाजिक भिन्नता, विशेषीकरण और पारस्परिक निर्भयता सामाजिक स्थायित्व का द्योतक है।

८. आर्थिक जीवन (Economic Life)

१—व्यवसाय	ग्रामों का प्रधान व्यवसाय कृषि है। उनका संपर्क चाहे पेड़, पशु और पक्षी से ही क्यों न हो वे सीधे प्रकृति से सम्बन्धित होते है। इस कारण किसान प्राकृतिक पर्यावरण में कार्य करता है। वे ईश्वरीय भय मे प्रभावित होते हैं और मनुष्य को ईश्वर का पुत्र मानते हैं।	नगरों का प्रधान व्यवसाय उद्योग है, जो मशीन और ऐसी ही अन्य चीजों से होता है। यहां व्यवसायों की अनेकता तथा श्रमविभाजन का विशेषीकरण पाया जाता है। द्राव्यिक व्यवस्था आज उद्योगों के लिये वरदान सिद्ध हो रही है, जो नगरों ही में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है।
२—जीवन स्तरण	ग्रामों में धनोपार्जन के साधन सीमित होते हैं। उनका स्वभाव खर्चीला न होकर बचत का होता है। लेकिन प्राकृतिक विपदा और सामाजिक रीति-रिवाज उन्हें बचाने भी नही देते हैं। प्रायः ग्रामों में किसान हो या जमीदार सब सादा रहन-सहन ही रखते है। इसी में उनकी सामाजिक सुरक्षा होती है।	नगरों में धनोपार्जन के असंख्य साधन होते हैं। उनका स्वभाव खर्चीला होता है। जीवन के लिये आवश्यकताओं की अधिकता होती है, जिनकी पूर्ति वे अधिक खर्च कर के भी नहीं कर पाते है। यहाँ जीवन स्तर के दोनों छोर मिलते हैं। एक ओर तो करोड़पति और दूसरे ओर दरिद्र भिखारी। नगरीय जन अधिकांश बाह्य प्रसाधनों पर धन अधिक व्यय करते हैं।

६. सांस्कृतिक जीवन (Cultural Life)

१. संस्कृति की प्रकृति	ग्रामों की संस्कृति स्थिर होती है। कृषक अपना जीवन निश्चित ढंग से बिताने के कारण स्वयं भी ऋतुओं के समान निश्चित काल चक्र के समान चलता है।	नगरों की संस्कृति गतिशील होती है। नगरीय समाज का जीवन विभिन्न संस्कृति सम्मिश्रण से प्रभावित होता है।
२. संस्कृति का आधार	ग्रामीण संस्कृति जातिगत और पवित्रता पर आधारित होती है। इसमें परंपराओं की पूजा होती है जिसका लोग अनिवार्य रूप से पालन करते है।	नगरीय संस्कृति धर्म निरपेक्ष होती है। इस पर नवीन विचार धाराओं का प्रभाव पड़ता है। परंपराओं का संबंध ढीला रहता है जिनका पालन अनिवार्य नहीं होता है।

१०. सामाजिक विघटन

	ग्रामीण समाज स्थिर रूढ़िवादी होता है। व्यक्ति का स्थान निश्चित होता है। सामाजिक प्रत्येक कार्य के प्रतिमान निश्चित होते हैं। इसमें मानसिक संघर्ष और निराशा की दशा उत्पन्न ही नहीं होती है।	नगरीय समाज में सांस्कृतिक भिन्नता और सभ्यता तीव्र प्रगति के कारण सामाजिक परिवर्तन की तीव्र गति की समस्या के परिणाम स्वरूप व्यक्ति के मस्तिष्क में मानसिक कलह घर कर जाता हैं। आर्थिक तूफान के कारण दरिद्रता और बेकारी आर्थिक दशा को हिला देती है। इससे व्यक्ति की प्रकृति में अपराधीपन की भावना घर कर जाती है और व्यक्तिगत पारिवारिक तथा सामाजिक विघटनों को नित्य प्रोत्साहन मिलता जाता है। नगरों में जनसंख्या की अधिकता के कारण गंदी और घनी बस्तियों का निर्माण, वेश्यावृत्ति और भिक्षावृत्ति आदि सभी नगरीय समस्यायें सामाजिक विघटन को प्रोत्साहन देते हैं।

इस प्रकार ग्रामीण और नगरीय संसार का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकता है।

ग्रामीण और नगरीय संसार की अन्योन्याश्रितता—

उक्त तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट है कि दोनों प्रकार के जीवन में कितना अंतर है। लेकिन यह कभी नहीं भूलना चाहिये कि दोनों का प्रभाव एक दूसरे पर पड़ता है। क्योंकि एक के बिना दूसरा समाज रह नहीं सकता है। ग्रामीण समाज जीवन सामग्री देता है तो नगरीय समाज सभ्यता के भौतिक साधन, जिनसे एक दूसरे की आवश्यकता-पूर्ति होती है। इससे स्पष्ट है कि ग्रामीण और नगरीय संसार आपस में भिन्नता रखते हुए भी एक दूसरे पर आश्रित पाया जाता है।

प्रकरण का सारांश

१—ग्रामीण और नगरीय संसार की तुलना में कठिनाइयाँ।
- (१) स्पष्टीकरण का अभाव।
- (२) ग्रामीण और नगरीय अंशों में भिन्नता।
- (३) पर्यावरण की भिन्नता।
- (४) नगर और ग्राम की परिवर्तनशील प्रकृति।

२—ग्रामीण और नगरीय संसार—तुलना की एक दृष्टि से।
- (१) सोरोकिन और ज़िमरमैन के अनुसार तुलना।
- (२) आधुनिक विद्वानों के अनुसार ग्रामीण और नगरीय संसार की तुलना के आधार।
  - (क) सामाजिक संगठन।
- (१) परिवार।
- (२) विवाह।
- (३) स्त्रियों की स्थिति।
- (४) पड़ौस।
- (५) अहं की भावना।
- (६) सामाजिक स्तरण।
  - (ख) सामाजिक नियन्त्रण।
  - (ग) सामाजिक सम्बन्ध।

(१) वैयक्तिक सम्बन्ध।
(२) सामाजिक समूह।
(घ) सामाजिक अन्तर्क्रियायें।
(१) सम्बन्ध।
(२) सहयोग।
(३) प्रतिस्पर्धा।
(४) संघर्ष।
(५) अनुकूलन।
(६) एकीकरण।
(च) सामाजिक दृष्टिकोण।
(१) प्रगतिशीलन।
(२) राजनैतिक चेतना।
(३) सामाजिक सहिष्णुता।
(४) धर्म तथा आचार।
(५) भाग्यवादिता।
(६) कृत्रिमता।
(छ) सामाजिक गतिशीलता।
(ज) सामाजिक स्थायित्व।
(झ) आर्थिक जीवन।
(१) व्यवसाय।
(२) जीवन का स्तर।
(ट) सांस्कृतिक जीवन।
(१) संस्कृति की प्रकृति।
(२) संस्कृति का आधार।
(ठ) सामाजिक विघटन।
३—ग्रामीण और नगरीय संसार की अन्योन्याश्रितता।

अध्याय ६

अपराध

Crime

अपराध की धारणा एवं अर्थ—

अपराध एक विस्तृत धारणा है। एक समय में जो बात अयोग्य या समाज द्वारा या राज्य द्वारा अपराध मान ली जाती है, वह सदा के लिये नहीं होती। उदाहरण के लिये ब्रिटिश काल में कांग्रेस द्वारा जूलूस निकालना, सत्याग्रह करना या भाषण देना आदि बातों को अपराध माना गया था। लेकिन भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त होने के बाद अब यह धारणा नहीं रही। एक समाज में एक व्यवहार को अपराध माना जाता है। 'अपराध' को समय-समय पर परिभाषित किया जाता है। एक स्थान पर एक व्यवहार को अपराध माना जाता है लेकिन एक ही देश के दूसरे स्थान पर उसी व्यवहार को अपराध नहीं माना जाता। उदाहरण के लिये मद्यपान महाराष्ट्र राज्य में अपराध माना गया है लेकिन भूतपूर्व म० भा० में अभी भी इसे अपराध नहीं माना जाता। सरल अर्थों में यह कहा जा सकता है कि स्वीकृत प्रतिमानों के प्रतिकूल व्यवहार को अपराध कह सकते हैं।

अपराध की परिभाषायें—

श्री डैरो के अनुसार "अपराध एक ऐसा कार्य है जो कि देश के कानून के द्वारा निषिद्ध हो और जिसके लिये दण्ड निर्धारित है।"[1] इससे स्पष्ट है कि जब एक देश में कानून बनाकर किसी व्यवहार को निषिद्ध या अवैधानिक घोषित किया जाता है तो उसे हम अपराध कह सकते हैं।

या दूसरे शब्दों में देश में प्रचिलित कानून का भंग करना अपराध है। उसके लिये अपराधी को नियमानुसार कुछ दण्ड भी देना पड़ता है या कारावास में रहना पड़ता है, बशर्ते कि उसका अपराध न्यायालय में सिद्ध हो।

---

1. *Darrow, C.*: "Crime—Its Causes and Punishment" (1934), P.1.

डॉ० सेठना के अनुसार "अपराध कोई कार्य या दोष है जो कि देश में उस समय प्रचलित कानून के अन्तर्गत दण्डनीय है"।[1]

बार्न्स तथा टीटर्स ने अपराध की निम्नलिखित परिभाषा दी है "अपराध एक ऐसी व्याख्या है जो समाज-विद्रोही प्रतिरूप है तथा जनता की भावना को उस सीमा तक भंग करे कि उसे कानून द्वारा निषिद्ध कर दिया गया हो"।[2] बार्न्स तथा टीटर्स की यह परिभाषा समाजशास्त्रीय परिभाषा है। वास्तव में देखा जाय तो अपराध एक समाज विरोधी तथा समाज के अस्तित्व में बाधा पहुंचाने वाला तत्व है। अपराध एक स्थिति है। श्री हैकरवाल ने अपराध के सम्बन्ध में लिखा है "सामाजिक दृष्टि-कोण से अपराध तथा बाल अपराध मनुष्य का एक ऐसा व्यवहार है जो उन मानवी-सम्बन्धों की व्यवस्था में बाधा डालता है जिसे समाज अपने अस्तित्व के लिये मौलिक अवस्था मानता है"।[3]

अपराध का वर्गीकरण (Classification of Crimes)—

१—**श्री हेज** (Hayes) **के अनुसार** :

(१) व्यवस्था के विरुद्ध अपराध (Crime against admin'stration).

(२) सम्पत्ति के विरुद्ध अपराध (Crime against property).

(३) व्यक्ति के विरुद्ध अपराध (Crime against person).

२—**श्री बोन्गर** (Bonger) **के अनुसार** :

(१) आर्थिक अपराध (Economic Crimes).

(२) योनि अपराध (Sexual Crimes).

(३) राजनैतिक अपराध (Political Crimes).

(४) अन्य विविध अपराध (Miscellaneous Crimes).

अपराधियों का वर्गीकरण (Classification of the Criminals)—

१—**श्री सदरलैंड का वर्गीकरण**—

(१) निम्नवर्ग अपराधी (Lower-class Criminals).

(२) सफेदपोश अपराधी (White-collar Criminals).

२—**लॉम्ब्रोसो का वर्गीकरण**—

(१) जन्मजात अपराधी (Born Criminals).

(२) पागल अपराधी (Insane Criminals).

(३) आकस्मिक अपराधी (Occasional Criminals).

(४) भावोदवेग अपराधी (Criminals by Passion).

1. *Sethna, M. J.* : "Society and the Criminals" (1952).
2. *Barnes and Teeters* : "New Horizons in Criminology," *Prentice Hall* (1959) P. 70.
3. *Dr. Haikerwal* : "Economic and Social Aspects of Crime in India."

३—हेज् के अनुसार—

(१) प्रथम अपराधी (दोषी) (First Offender).
(२) आकस्मिक अपराधी (Occasional Delinquent)
(३) पेशेवर अपराधी (Habitual Criminals).
(४) अभ्यस्त अपराधी (Professional Criminals).

अपराध और अपराधी का वर्गीकरण

उक्त अध्ययन के पश्चात अपराध और अपराधी का निम्न वर्गीकरण किया जा सकता है।

१. निम्न वर्ग अपराधी—

अपराधी अधिकतर निम्न वर्ग के होते हैं। औद्योगिक क्षेत्र में कार्य करने वाले श्रमिक इस वर्ग में आते हैं जिन्हें निम्न वर्ग अपराधी कहा जाता है।

२. सफेद पोश अपराधी—

समाज के अध्ययन वर्ग के तथा प्रतिष्ठित व्यक्ति इस वर्ग में आते हैं जो अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये, जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिये तथा उत्तम भवनों और मोटर कार को प्राप्त करने के लिये अपराध करते हैं। प्राय: यह देखा गया है कि ये लोग समाज के सम्माननीय व्यक्ति होते हैं तथा उनके गुप्त रूप से व्यभिचार तथा अनैतिकता के अड्डे होते हैं। ये प्राय: शिक्षित, अनुभवी, तथा समझदार होते हैं।

३. जन्मजात अपराधी—

बहुत से लोग वंशानुगत रूप से माता-पिता के द्वारा अपराधी वृत्ति प्राप्त करते हैं तथा वे जन्मजात अपराधी कहलाते हैं।

४. पागल अपराधी—

पागलपन के कारण बहुत से व्यक्तियों का मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है तथा वह अपराध कर बैठते हैं। ऐसे व्यक्तियों ने हत्याएँ भी की हैं। इन्हें पागल अपराधी कहते हैं।

५. आकस्मिक अपराधी—

बहुत से व्यक्ति कभी-कभी अपराध करते हैं ये व्यक्ति नियमित अपराधी नहीं होते हैं परन्तु विशेष अवसर मिलने पर अपराध करते हैं।

६. भावोद्वेग अपराधी—

कभी-कभी समझदार व्यक्ति भी भावना प्रबल होने के कारण अपराध कर बैठते हैं। हत्या, मारपीट आदि बातें अनजाने में ही हो जाती हैं।

७. प्रथम अपराधी—

अपराधी व्यक्ति के प्रथम अपराध को एकदम बुरी दृष्टि से नहीं देखा जाता। अपराधी एक बार अपराध करने पर प्रायः बार-बार अपराध करते हैं। प्रथम अपराधियों का प्रतिशत कम होता है।

८. पेशेवर अपराधी—

कुछ व्यक्ति अपराध को व्यवसाय के रूप में अपना लेते है। विशेषतः कुछ अपराधी या जरायम पेशा जातियाँ जिनके परिवार तथा समूह एक व्यवसाय के रूप में अपराध कार्य करते रहते हैं तथा अपना जीवन व्यापन करते हैं।

९. अभ्यस्त अपराधी—

बहुत से व्यक्ति अपराध करने के आदी हो जाते हैं। बिना अपराध के उन्हें चैन नहीं पड़ती। एस व्यक्ति अपराधी-व्यवसाय को ग्रहण कर लेते हैं तथा अभ्यस्त अपराधी कहलाते है।

अपराध के कारण (Causes of Crime)—

"अपराधी पैदा नहीं होते बनाये जाते हैं।" अपराध-शास्त्री पर्यावरण को अपराधी के साथ सम्बन्धित मानते हैं। मनुष्य अपराध क्यों करता है? यह बड़ा मनोरंजनात्मक एवं महत्वपूर्ण प्रश्न है। कभी-कभी अपराधी को अपराध करते समय एक विशेष प्रकार का आनन्द होता है तो कभी-कभी अनजाने में अपराधी अपराध कर बैठता है। कभी-कभी ऐसी परिस्थितियाँ हो जाती हैं कि अपराधी अपराध करने के लिये मजबूर हो जाता है। इलियट तथा मेरिल ने उचित ही कहा है कि "अपराध एक विशेष स्थिति है"। वास्तव में देखा जाय तो अपराध एक व्यवहार का प्रतिरूप (Form of Behaviour) तथा मन की स्थिति है। सामाजिक रूप से कभी-कभी छोटे अपराधियों की रोक-थाम विरादरी के नियमों के अनुसार व्यक्ति को दण्डित करके की जाती है। भारत में ग्रामीण तथा नगरीय दोनों क्षेत्रों में अपराध होते रहते हैं। इन अपराधों के भिन्न-भिन्न कारण हैं और इन अपराधियों का वर्गीकरण भी भिन्न-भिन्न प्रकार से किया जा सकता है। अपराध नगरों में ग्रामों की अपेक्षा अधिक होते हैं तथा अनेक अपराध नगरों में इस प्रकार के होते हैं कि उनका बहुत दिनों तक पता ही नहीं चल पाता। इसका प्रमुख कारण यह है कि अपराध को प्रोत्साहित करने के नगरों में अनेक साधन हैं। व्यस्त जीवन एवं द्वैतीयक सम्बन्ध होने के कारण घनिष्ठता का अभाव होता है। नगरों के अपराध की एक विशेषता "सुसंगठित अपराध" (Organized Crime) है। जैसे-जैसे नगरीकरण में वृद्धि होगी वैसे-वसे

अपराध अधिक होंगे। विज्ञान जैसे-जैसे विकास के पथ पर अग्रसर हो रहा है वैसे-वैसे अधिकाधिक सुसंगठित अपराध होने की सम्भावना बढ़ती जा रही है। वैसे भी नगरों में चलचित्रों के द्वारा भी सुसंगठित अपराध को प्रोत्साहन मिल रहा है। भारत जैसे देश में जहाँ अधिकतर जनता अशिक्षित एवं अविकसित हैं "अपराधी फिल्मों" को कदापि प्रदर्शित नहीं किया जाना चाहिये।

आधुनिक युग में समाजशास्त्री एवं अपराधशास्त्री इस बात को मानते हैं कि अपराध का कोई एक कारण नहीं है।
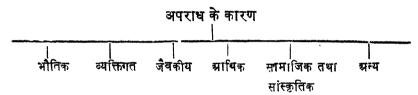
(१) **भौतिक कारण** (Physical Factors)—

अपराध एक व्यवहार है तथा उसका प्रकृति से सम्बन्ध है। अपराधी व्यवहार देश के जलवायु, ऋतु तथा प्राकृतिक दशाओं पर आधारित है। उसका विवेचन हम निम्नलिखित उप कारकों में करेंगे।

(क) **जलवायु** (Climate)—

मान्टेमक्यू ने अपनी पुस्तक Spirit of Laws में बताया है कि "जैसे-जैसे हम भूमध्य रेखा की ओर बढ़ते जाते हैं वैसे-वैसे अपराध की दरें भी बढ़ती जाती हैं तथा उत्तरी या दक्षिणी ध्रुवों की ओर बढ़ने के साथ-साथ मद्य सेवन अधिक मिलता है। प्रिन्स पीटर क्रोप्टकिन (Prince Peter Kropotkin) ने नरहत्या तथा जलवायु का घनिष्ट संबंध बताया है। इसी प्रकार श्री क्वेटलेट महोदय ने प्रगट किया कि गर्म जलवायु वाले प्रदेशों में व्यक्ति के प्रति अपराध तथा हिंसात्मक (violent) अपराध अधिक होते है जबकि ठंडी जलवायु वाले भागों में सम्पत्ति के प्रति अपराधों का प्राधान्य होता है। इस प्रकार अपराध का जलवायु से घनिष्ट संबंध है।

(ख) **ऋतु** (Season)—

अपराधशास्त्रियों ने ऋतुओं का अपराध से संबंध बतलाया है। उनके अनुसार गर्मियों में व्यक्तियों के विरुद्ध अपराध अधिक होते हैं तथा ठंड के दिनों में सम्पत्ति के विरुद्ध अपराधों की संख्या में वृद्धि होती है। श्री लैंकेमन के अपराधीजंत्री के

अनुसार जनवरी, फरवरी, मार्च तथा अप्रैल के महीनों में शिशुहत्या बढ़ जाती है। जुलाई में नरहत्यायें एवं घातक आक्रमण अधिक होते हैं। अक्टूबर में पितृहत्या, तथा बलात्कार के प्रकरणों की संख्या मई, जुलाई और अगस्त में अधिक होती है। सम्पत्ति के विरुद्ध अपराध सबसे अधिक दिसम्बर और जनवरी में होते हैं। इन अनेक प्रकार के अपराधों का ऋतुओं से सम्बन्ध होता है।

(ग) **प्राकृतिक दशा** (Physical Aspects)—

प्रसिद्ध अपराधशास्त्री श्री लॉम्ब्रोसो ने बताया था कि व्यक्ति के विरुद्ध अपराध पहाड़ी भागों में अधिक, पठारी क्षेत्रों में उससे कम तथा मैदानी भागों में सबसे कम होते हैं। उन्होंने जो आँकड़े प्रस्तुत किये थे उनसे मालूम होता है कि पठारी तथा पहाड़ी प्रदेशों में बलात्कार की घटनायें अधिक होती हैं।

(२) **व्यक्तिगत कारण** (Personal Factors)—

व्यक्ति में कुछ दोष ऐसे होते हैं, जो 'अपराधी प्रवृत्ति को बनाते हैं। लॉम्ब्रोसो महोदय का विश्वास था कि सभी जन्मजात अपराधी अपस्मीरी होते हैं तथा शारीरिक विकृतियाँ ही व्यक्ति को अपराधी बनाती हैं। परन्तु चार्ल्स गोरिंग ने अपनी पुस्तक 'The English Convict' में इसका विरोध किया है। उनका विश्वास था कि शारीरिक विकृति का तथा अपराधी वृत्ति का कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं है। लेकिन वे मानते थे कि अपराधियों की लंबाई और वज़न गैर अपराधियों के वज़न और लंबाई से कम होती है। इसके पश्चात इ० ए० हुटन महोदय ने अपनी पुस्तक Crime and Man (1939) में लॉम्ब्रोसो के कथन की पुष्टि की है। इन्होंने १४ हज़ार कैदियों और तीन हज़ार गैर अपराधियों का अध्ययन किया था। इन्होंने अध्ययन के पश्चात् निष्कर्ष निकाला कि (१) अपराधी व्यवहार किसी भी जाति या प्रजाति से विशेष रूप से संबंधित नहीं है, (२) प्रत्येक प्रजाति में अपराधी व्यक्ति होते हैं, तथा (३) अपराधी निम्नवर्ग के एवं उच्च वर्ग के भी होते है।

श्री हुटन महोदय के अध्ययन तथा निष्कर्षो की शास्त्रीय आधार पर आलोचना की जा सकती है। श्री हुटन महोदय ने जो सेम्पल चुना था वह ठीक नहीं था। उसम गैर अपराधियों की संख्या अपराधियों की संख्या से अत्यंत कम थी तथा आपने केवल Blue collar criminal का ही विचार किया था।

इसी प्रकार सिद्धानों ने अनेक शारीरिक विकृतियों का अपराध से सम्बन्ध बतलाया है। इसका तात्पर्य यही है कि शारीरिक विकृतियों के कारण व्यक्ति में

न्यूनता का भाव आता है। समाज उसकी उपेक्षा करता है और वह अपराध कर बैठता है।

(क) **संवेगात्मक अस्थिरता तथा संघर्ष** (Emotional Instability Conflict)—

व्यक्ति अपराध क्यों करता है ? एक तो व्यक्ति को मालूम रहता है कि वह अपराध कर रहा है। दूसरी बात अनजाने ही कुछ बातों के कारण या परिस्थिति के कारण वह अपराध कर बैठता है। अपराध का सम्बन्ध संवेगात्मक अस्थिरता तथा मानसिक संघर्ष भी है। समाज में प्रत्येक व्यक्ति अपनी हीनता की भावना को छिपाना चाहता है हीनता को छिपाने के लिये वह अपराध करता है तथा साहसी वृत्ति का परिचय देना है। योनि सम्बन्धी अपराधी प्रेम में असफल व्यक्ति हो सकता है।[1]

विलियम ए० व्हाइट ने प्रमुख संवेग तीन बतलाये हैं :[2] (१) प्रेम (२) घृणा तथा (३) दोष।

(ख) **मानसिक दोष तथा रोग** (Mental Deficiency and Disease)-

डॉ० गोडार्ड ने अपनी पुस्तक बाल अपराध में लिखा है कि अपराध और बाल अपराध का प्रमुख कारण मानसिक दुर्बलता या मंद बुद्धि है।[3] इन व्यक्तियों में कानून को समझने की क्षमता नहीं होती है। इनका मस्तिष्क दुर्बल होता है। वे अपराध के परिणाम के बारे में भी नहीं सोचते तथा अपराध कर बैठते हैं। डॉ गोडार्ड इस बात को मानते थे कि सभी अपराधी मंदबुद्धि वाले है और सभी मंद बुद्धि वाले अपराधी होते हैं। उनकी मानसिक अयोग्यताएँ मेंडल के अनुसार वंशानुसंक्रमण के अनुसार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती है। लेकिन श्री कार्ल महोदय ने गोडार्ड के कथन की आलोचना की है तथा बतलाया है कि इसके पीछे कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है।

प्रो० सदरलैंड ने अपनी पुस्तक 'Principles of Criminology' में कुछ महत्वपूर्ण बातें प्रस्तुत की हैं :[4] (१) मंद बुद्धि वाले समूह में साधारण जनसमूह

1. *Elliott and Merrill* : P.120.
2. *White, William A.* : "Crime and Criminals" (1933), Ch. VI.
3. *Goddard, Henry H.* : "Juvenile Delinquency" (1921), P. 22.
4. *Sutherland, E. H.* : "Principles of Criminology" (Newyork 1955), pp. 118-19.

की अपेक्षा अधिक अपराधी होते हैं ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता; (२) जो बंदी मंद बुद्धि के होते हैं वे जेलखाने में अच्छा व्यवहार करते हैं तथा अनुशासन का पालन करते हैं; तथा (३) जो बन्दी मंद बुद्धि के थे वे सुधारात्मक प्रयत्नों में उतने ही सफल हुए जितने कि अन्य अपराधी।

डॉ० सदरलैंड ने इस प्रकार स्पष्ट रूप से बतलाया है कि मंद बुद्धि के लोग और अपराध इनमें कोई महत्वपूर्ण सम्बन्ध नहीं है।

भारतीय समाज के अपराध सम्बन्धी आंकड़े देखने के पश्चात मालूम होता है कि निम्नस्तर के अपराध बुद्धिहीनता के कारण होते हैं। लेकिन जालसाजी, सरकारी रकम का गबन, अमानत में खयानत, आदि अनेक प्रकार के अपराध मध्य वर्ग के लोगों द्वारा किये गये हैं तथा इनमें अपराधियों की बुद्धि का परिचय अधिकतर मिलता है।

(ग) शिक्षा (Education)—

संयुक्त गणराज्य अमेरिका में सरकार द्वारा किये गये अध्ययन से निम्नलिखित बातें मालूम होती हैं। ८९ प्रतिशत बन्दी केवल थोड़ा बहुत लिखना पढ़ना जानते है। ६८ प्रतिशत बंदियों को किसी भी प्रकार का प्रशिक्षण प्राप्त नहीं है। शिक्षित व्यक्तियों के द्वारा गबन, जालसाजी, भ्रूणहत्या, इन्कमटैक्स से बचना इत्यादि अपराध किये जाते हैं। ये अपराध योजनाबद्ध हो रहे हैं जिसके कारण अपराधी आसानी से पकड़ में नहीं आते। अशिक्षित व्यक्ति उदरपूर्ति के लिए चोरी, लूटमार इत्यादि अपराध करते हैं।

(घ) मद्यपान—

पश्चिमी देशों में तथा भारत में जो अपराधी पाये गये हैं, उनमें अधिकतर मद्यपान के आदी होते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि मद्यपान करने वाले समस्त लोग अपराधी होते हैं। लेखक ने इन्दौर नगर में सूती मिलों में कार्य करने वाले श्रमिकों का जो अध्ययन किया है, उससे निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मजदूर एवं निम्नस्तर के कर्मचारी अत्यधिक शराब, भांग, गांजा इत्यादि मादक पदार्थों के सेवन करने वाले होते हैं। मद्यपान से इन व्यक्तियों का संतुलन बिगड़ जाता है, नैतिक पतन होता है, आर्थिक हालत गिर जाती है और वे अपराध कर बैठते हैं। औद्योगिक श्रमिक बस्तियों में नित्य प्रति शराब पीने के प्रकरण और अपराध होते रहते हैं।

(ङ) **वैवाहिक प्रस्थिति** (Marital Status)—

अधिकतर अपराधी अविवाहित, तलाकशुदा अथवा विधुर होते हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि यह व्यक्ति अपने को पारिवारिक दृष्टि से अविघटित पाते हैं जिससे उनका मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है और वे अपराधी बन जाते हैं।

(च) **लिंग** (Sex)—

संयुक्त गणराज्य अमेरिका के आंकड़ों से पता चलता है कि स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष अधिक अपराधी होते हैं। बाल अपराधियों में भी ८५% अपराधी लड़के होते हैं। भारत में भी अनेक प्रकार के अपराधियों में स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष अधिक अपराधी पाये जाते हैं। अपराध-शास्त्रियों को चाहिये कि दोनों लिंगों का अनुपात देखें तथा उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि को समझें।

(३) **जैवकीय कारण** (Biological Factors)—

लोम्ब्रोसो तथा उनके अनुयायियों के अनुसार अपराधी जन्मजात होते हैं तथा व्यक्ति को अपराध के तत्व वाहकाणू द्वारा प्राप्त होते हैं। उन्होंने बताया कि वंशानुसंक्रमण द्वारा ही अपराधियों के बच्चों में वे सब विशेषताएँ आ जाती है जो अपराधियों में रहती हैं। इसी प्रकार अनेक विद्वानों ने यह सिद्ध किया कि अपराधी व्यवहार जन्मजात होता है। समाजशास्त्रीय आधार पर आधुनिक काल में इस पर विश्वास नहीं किया जाता। बच्चा जब जन्म लेता है तो एक जैविक सज्जा होता हैं। यदि सम्पूर्ण पर्यावरण अनुकूल होता है तो वह कदापि अपराधी नहीं बन सकता। बहुत कुछ पर्यावरण पर निर्भर होता है। मध्य प्रदेश में ग्वालियर के निकट जो दस्यु परिवार हैं उनके अनेक सदस्य आज सरकारी तथा गैर सरकारी पद पर कार्य कर रहे हैं तथा वे अपराधी नहीं बने। साथ ही ऐसे भी प्रकरण देखने में आये हैं कि उनके माता पिता अपराधी नहीं हैं परन्तु उनके बच्चे अपराधी बन गये हैं।

(४) **आर्थिक कारण** (Economic Factors)—

(क) **दरिद्रता तथा बेकारी**—

दरिद्रता तथा वेकारी को अपराध का प्रमुख कारण माना गया है। परिवार के मुखिया को भूख और प्यास से तड़फते हुए स्त्री और बच्चों की ओर नहीं देखा जाता। उनकी प्राथमिक आवश्यकताओं की वस्तुओं के लिए वह चोरी करता हैं। अनेक अवैध तरीकों को अपनाता है। ऐसे परिवारों में प्रायः बालक भी बाल अपराधी हो

जाते हैं तथा स्त्रियों की दुर्दशा होती है। वे वैश्यावृत्ति की ओर अग्रसर होती हैं।

(ख) **फसलों की दशा—**

भारत कृषिप्रधान देश है तथा अधिकतर लोग कृषि व्यवसाय में लगे हुए हैं। बुरी फसल के कारण अनेक कृषक एवं अन्य लोग अपराध कर बैठते है। फसल बिगड़ जाने से अनेक श्रमिक बेघरबार हो जाते हैं तथा अपराधी वृत्ति का निर्माण होता है।

(ग) **नगरीयकरण—**

हम ऊपर लिख चुके हैं कि जैसे-जैसे नगरीयकरण होगा, उद्योग और व्यापार बढ़ेगा वैसे-वैसे अपराध भी अधिक होंगे। आज कल यह प्रवृत्ति देखने में आती है कि ग्रामीण लोग नगरों की तरफ आकर्षित होते हैं क्योंकि नगरों में उन्हें रोजगार मिलता है। नगरों की चमक-दमक में रहने के उपरान्त वे वापस अपने परिवार में नहीं जाना चाहते क्योंकि नगर में वे अकेले स्वतन्त्रतापूर्वक बिना किसी के नियन्त्रण के जीवन व्यापन करते हैं। नगर के पर्यावरण में वे मद्यपान और वैश्यावृति में फँस जाते हैं जिसके चक्कर में फँसकर ऐसी परिस्थिति आती है कि अपराध करने को बाध्य होना पड़ता है।

(घ) **गन्दी बस्तियाँ—**

शहरों में अत्याधिक भीड़भाड़ के कारण मकानों की कमी है। नगरों का विकास हो रहा है और बिना आयोजना के अस्वास्थप्रद मकान तैयार हो गये हैं। इन मकानों में एक-एक कमरे में १०-१० व्यक्ति रहते हैं। ऐसी स्थिति में स्त्रित्व कुंठित होता है और बच्चों पर बुरा असर होता है। बड़े लोगों के नैतिक चरित्र का पतन होता है और बच्चे बाल अपराधी बन जाते हैं। इन गन्दी बस्तियों के कारण मद्यपान, वश्या व्यवसाय, अनैतिकता, अपराध, बाल अपराध, निर्दयता, हत्याएँ आदि बातों को प्रोत्साहन मिलता है। यही कारण है कि ग्रामों की अपेक्षा नगरों में अधिक अपराध होते हैं।

(ङ) **सिनेमा—**

नगर सिनेमा का केन्द्र होता है। आधुनिक युग में सिनेमा की ओर जनता तीव्रगति से आकर्षित हो रही है क्योंकि इसके अलावा दूसरा कोई मनोरंजन का साधन नहीं है। अधिकतर सिनेमा में आजकल अश्लीलता एवं युवक-युवतियों का प्रणय बतलाया जाता है। युवक-प्रेमी अपनी प्रेयसी को प्राप्त करने के लिये हत्या भी करता

है ऐसा दिखाया जाता है । भारत में आजकल अपराधी चलचित्र अधिक बन रहे हैं । ये चित्र हत्या, मारपीट आदि से भरे रहते हैं जिसमें अपराधी की निपुणता एवं वह अपराध किस परिस्थिति में कैसे योजनाबद्ध रूप से करता है, यह बतलाया जाता है । भारत जैसे देश में जहाँ पर अधिकांश जनता अज्ञानी एवं निरक्षर है, इनका अत्यन्त बुरा प्रभाव पड़ता है ।

(च) स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों का आधिक्य—

सन् १९५१ की जनगणना के अनुसार भारत में प्रति हजार पुरुषों के साथ ९४६ स्त्रियाँ थीं । सन् १९६१ की जनगणना में मालूम हुआ कि भारत में स्त्रियों का अनुपात कम हो रहा है । वर्तमान १००० पुरुषों के साथ केवल ९४० ही स्त्रियाँ हैं । बम्बई, कलकत्ता और कानपुर जैसे औद्योगिक केन्द्रों पर तो पुरुष स्त्रियों से दुगुने हैं । स्त्रियों की कमी तथा अभाव का नगर की नैतिकता पर प्रभाव पड़ता है । इसके फलस्वरूप नाइट क्लब रंगरेलियाँ, व्यभिचार आदि पनपते हैं ।

(छ) मोटरकार एवं अन्य साधनों के द्वारा—

हमने पहले ही बताया है कि नगर में आयोजित अपराध होते हैं, जिसका कारण यह है कि नगर में मोटर, ट्रक, बसें अनेक साधन ऐसे होते हैं जिनके द्वारा अपराधी को भागने में सुविधा होती है । विशेषत: बैंकों को लूटना, किसी युवती को उड़ाना, किसी की हत्या करके भाग जाना, यह बातें नगर में हमेशा होती हैं । इन अपराधों को करने वाले व्यक्तियों का समूह होता है तथा वे योजनाबद्ध रूप से अपना कार्य करते हैं । कभी-कभी इन अपराधियों का मुकाबला करना ही नगरीय घनिष्ट पर्यावरण के कारण कठिन होता है ।

(ज) नगरीय भीड़-भाड़ उत्पन्न करके—

नगरों के राज-मार्गों पर तथा चौराहों पर अत्यन्त भीड़-भाड़ होती है । अनेक व्यक्तियों को यह देखकर कहना कठिन है कि कौन ईमानदार है और कौन अपराधी । यदि कोई व्यक्ति साइकिल चुरा कर भागता है तो सड़क पर चूँकि सैकड़ों साइकिल से जाते हैं किसे पकड़ना है, यह मालूम करना कठिन हो जाता है । इस प्रकार नगरीय भीड़-भाड़ उत्पन्न करके नगरीयकरण ने अप्रत्यक्ष रूप से अपराधों को प्रोत्साहन दिया है ।

(झ) व्यापार व्यवसाय में मंदी आना—

औद्योगिक नगरों में हमेशा वस्तुओं के मूल्य घटते-बढ़ते रहते हैं । जो व्यापारी सोना, चाँदी, रुई, खली, कपास, कपड़ा इत्यादि का बड़ पैमाने पर व्यापार करते हैं

वे कभी-कभी तो लखपती हो जाते हैं तो कभी भिखारी । आर्थिक आवश्यकता अनेक प्रकार के अपराधों को जन्म देती है । प्रायः व्यापारियों का दीवाला निकाल कर भागना, आग लगा कर बीमा कम्पनी से रुपया लेना इत्यादि बातें देखने में आती हैं ।

(ञ) प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देना—

नगर प्रतिस्पर्धा का केन्द्र है । विशेषकर व्यापार व्यवसाय में तो प्रतिस्पर्धा नंगा नाच करती है जिसका प्रभाव अनेक परिवारों पर पड़ता है तथा परिवार के मुखिया को अपराध करना पड़ता है ।

(५) सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारण (Socio-Cultural Factors)—

(क) दहेज प्रथा—

भारत में दहेज प्रथा अति घातक समझी गई है । इस समस्या ने वर्तमान में अत्यन्त आतंक मचाया है । इस प्रथा के कारण आत्म-हत्याएं, अनैतिकता, बाल-तथा बेमेल विवाह होते हैं । दहेज प्रथा का परिणाम हमें श्री प्रेमचन्द जी के "सेवा-सदन" उपन्यास में देखने को मिलता है जिसमें नायिका के पिता को गबन करना पड़ता है तथा स्वयं नायिका को वेश्या व्यवसाय अपनाना पड़ता है । डॉ० घुरे ने ठीक लिखा है—"इस घातक प्रथा के कारण अनेक बेमेल विवाह हो जाया करते हैं । यह सामाजिक प्रथा अपराधी व्यवहार को जन्म देती है ।

(ख) बेमेल विवाह—

दहेज प्रथा और बाल विवाह ने बेमेल विवाह को जन्म दिया है । अभी भी मुँह माँगा दहेज लिया जाता है तथा ६ से १० वर्ष तक की कन्याओं का विवाह ग्रामीण भारत में होता है जिस कारण अनैतिकता और योनि सम्बन्धी अपराध होते हैं ।

(ग) देवदासी प्रथा—

आज भी बौद्ध, जैन तथा हिन्दू धर्म के अनुसार कन्याओं को कुमारी रख कर ईश्वर की सेवा करने मन्दिरों मे भेजा जाता है । वहाँ पर वे धर्म की आड़ में वेश्याओं का जीवन व्यतीत कर रही हैं ।

(घ) उत्सवों पर—

अभी भी भारतीय ग्रामों में विशेप अवसरों पर मद्यपान तथा अनैतिकता एक संस्था बन गई है । जन-जातियों में तो मनुष्य हत्या एक साहस का कार्य माना जाता है । यह सब रुढ़ियों के अनुसार है । नागा जनजातियों में तो जब तक युवक मनुष्य का

नरमुंड अपने सिर पर नहीं लाता तब तक कोई कन्या उसे विवाह करने योग्य नहीं समझती। इस प्रकार अनेक उत्सवों पर तथा रुढ़ियों के आधार पर अपराध होते है।

(ङ) **पारिवारिक विघटन के कारण** (Due to family disorganisation)–

परिवार को समाजशास्त्री समाज की प्रथम इकाई मानते हैं। श्री हैली ने भी बताया है कि पारिवारिक जीवन में सुखी एवं असन्तुष्ट व्यक्ति अपराधी-प्रवृत्ति को जन्म देते है। निम्नलिखित दशा में परिवार विघटन होता है: (अ) विवाह विच्छेद के कारण, (ब) पति या पत्नी की मृत्यु हो जाने के कारण, (स) पति या पत्नी में से कोई एक दूसरे को छोड़ कर चला जाता है तब, तथा (द) पति या पत्नी यदि न्यायिक पृथक्करण के द्वारा प्रथक हों तब। ऐसी दशा में व्यक्ति का जीवन असन्तुलित हो जाता है। कभी कभी न्यूनता का भाव आ जाता है और अपराध करने की प्रवृत्ति का जन्म होता है।

६. **अन्य कारण** (Other Factors)—

(क) **युद्ध**—

युद्ध के समय में पुरुष युद्ध क्षेत्र में जाते हैं स्त्रियों को घरों में तथा अन्य जगह कार्य करना पड़ता है। आर्थिक स्तर मंहगाई के कारण गिर जाता है। अनेक परिवार टूट जाते है। राशनिक, काला बाजार, मुनाफेखोरी, व्याभिचार आदि बातों का आंतक रहता है। बड़े-बड़े नगर तथा उद्योग छिन्न-भिन्न हो जाते हैं, भुखमरी, बेकारी, निर्धनता, बाल अपराध, वेश्यावृत्ति का जन्म होता है।

(ख) **साम्प्रदायिक दंगे** (Communal Riots)—

हमारे देश में अनेक संप्रदाय एवं धर्म हैं। हमारे संविधान के द्वारा कोई विभेद नहीं किया जाता। समस्त लोग भारतीय हैं तथा उनको समान अधिकार प्राप्त हैं। फिर भी कभी-कभी सांप्रदायिकता व जनसमूहों की संकुचित प्रवृत्ति के कारण दंगे, मारपीट, हत्याएं होती रहती हैं। इसमें अनेक व्यक्ति अपराधी प्रवृत्ति को ग्रहण करते हैं।

(ग) **समाचार पत्र एवं पत्रिकाएँ** (News-paper and Magazine.)—

समाचार पत्र एवं पत्रिकाओं के द्वारा लोग शिक्षित तो होते हैं पर कभी-कभी विविध अपराधियों ने अपराध करते समय किन तंत्रों का प्रयोग किया या वे कैसे पकड़े गये आदि बातें होती हैं यह पढ़कर लोग लाभ उठाते हैं। उन्हें यह भी मालूम हो जाता है कि अधिकतर प्रकरणों में अपराधी न्यायालय द्वारा सबूत न

होने के कारण छोड़ दिये जाते हैं। अनेक पत्रिकाओं में नग्न तथा अर्धनग्न चित्र होते है। भारत में ऐसे पत्र एवं साप्ताहिक पत्रिकायें अनेक हैं। सरकार इस बात पर ध्यान नहीं दे रही है जिससे भारत जैसे अशिक्षित देश की जनता पर तथा उसके सामाजिक जीवन पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है।

अपराध के अनेक कारण हैं।

पाठकों को उपरोक्त कारणों का अध्ययन करने के बाद यह मालूम हो गया होगा कि अपराध के अनेक कारण हैं, कोई एक कारण ही नहीं है। उपरोक्त लिखित समस्त कारणों का प्रभाव व्यक्ति के सामाजिक जीवन को प्रभावित करता है तथा अपराधी प्रवृत्ति को जन्म देता है।

अन्त में हम कहेंगे कि आधुनिक अपराध-शास्त्रियों की धारणा के अनुसार अब केवल बेकारी, भुखमरी या दरिद्रता ही अपराध का प्रमुख कारण नहीं है बल्कि लोग इस कारण अपराध करते हैं कि :

(१) वे अपना जीवन स्तर ऊँचा उठाना चाहते है।

(२) वे अधिक सम्पन्न होना चाहते हैं।

(३) वे अधिक अच्छे भवनों में रहना चाहते हैं तथा अच्छी मोटर गाड़ियों में घूमना चाहते हैं।

केवल गरीब व्यक्ति ही अपराध करते हैं ऐसा नहीं है। बल्कि अधिक सम्पन्न और बड़े-बड़े उद्योगपति, उच्चपदाधिकारी भी अधिक सुखी और विलासिता का जीवन व्यापन करने के लिये अपराध करते है।

अपराध प्रवृत्ति यह मानसिक दृष्टिकोण (Mental outlook) है। अपराधी को मालूम रहता है कि वह अपराध कर रहा है, फिर भी वह करता है। भारत में मध्यवर्ग तथा उच्चवर्ग के लोग भी अनेक अपराध करते हैं। परन्तु ऐसे भी हजारों प्रकरण हैं जिनमें अपराध हुआ है यह दृष्टिगोचर ही नहीं होता।

अपराधों की रोकथाम।

अपराध समाज के लिये घृणित एवं तिरस्कारपूर्ण कार्य है। आधुनिक युग में कल्याणकारी राज्य द्वारा अपराधों की रोकथाम के लिये अनेक कार्य किये जा रहे है। दूसरे बंदीगृहों ने काफी सुधार किया है। विशेषत: उत्तर प्रदेश, बम्बई तथा मद्रास राज्य में। फिर भी वैधानिक ढंग से इसे रोकने की आवश्यकता है। इसका एकदम तो अन्त कदापि नहीं हो सकता। हम पहले ही लिख चुके हैं कि यह मानसिक

दृष्टिकोण है । हमारे मत से निम्नलिखित बातों पर प्रारम्भिक रूप से ध्यान दिया जाना चाहिये ।

१. आर्थिक आयोजना—

देश में कोई व्यक्ति बेकार नहीं रहने पाये । सब को काम मिले । हमारी पंचवर्षीय योजनायें अभी इस बात को पूरा नहीं कर पा रही हैं क्योंकि बेकारों की संख्या में प्रतिदिन वृद्धि हो रही है । शिक्षित एवं शासन द्वारा प्रशिक्षित व्यक्ति भी बेकार पड़े है ।

२. छोटे उद्योगों को प्रोत्साहन—

चीन तथा जापान में जिस प्रकार नागरिक छोटे-छोटे उद्योगों में व्यस्त हैं उसी प्रकार शासन द्वारा प्रत्येक गांव तथा नगर में आयोजना के आधार पर उद्योगों का निर्माण हो तथा उत्पादन की वस्तुएँ ऐसी होना चाहिये जिनका अन्तर्राष्ट्रीय बाजार हो ।

३. विद्यार्थियों को प्रशिक्षण—

शिक्षा के साथ-साथ अवकाश के समय में तथा गर्मियों की छुट्टियों में विद्यार्थियों को अलग-अलग व्यवसाय का प्रशिक्षण दिया जाय । उसके लिये शासन तथा समाज सेवी संस्थाओं को समुचित प्रशिक्षण केन्द्र प्रारम्भ करना चाहिये ।

४. स्वास्थ्यप्रद भवनों का निर्माण—

नगरों की भीड़-भाड़ के दुष्परिणामों की रोकथाम करने के लिये प्रत्येक व्यवसाय के लिये अलग बस्तियाँ हों, तथा स्वास्थ्यप्रद भवनों का निर्माण किया जाय, जहाँ पर बच्चों को सुन्दर पर्यावरण प्राप्त हो ।

५. सामाजिक और सांस्कृतिक आयोजन—

(क) कानून के प्रति श्रद्धा निर्माण—

सामाजिक एवं धार्मिक प्रथाओं को कानून के द्वारा समाप्त नहीं किया जा सकता, उसके लिये जन जागृति की आवश्यकता है । यह कार्य सामाजिक शिक्षा के माध्यम से तथा मजदूर संघ, ग्राम पंचायत आदि के माध्यम से हो सकेगा ।

(ख) अनिवार्य शिक्षा—

प्रत्येक स्त्री-पुरुष को अनिवार्य रूप से शिक्षित किया जाय तथा प्रारंभ से ही बच्चों को सह-शिक्षा (Co-education) दी जाय ।

(ग) परिवार निर्देशक—

परिवार कल्याण केन्द्रों की समुचित व्यवस्था हो, कल्याण अधिकारी और परिवार निर्देशक तथा सामाजिक कार्य-कर्ता को चाहिये कि वह अज्ञानी व्यक्ति के घर जाकर उसकी मुसीबतों का अध्ययन करे तथा उसका मार्ग दर्शन करें।

(घ) धर्म के माध्यम से—

धर्म के माध्यम से मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। मुहल्ले-मुहल्ले में जिस धर्म के लोग हों उस धर्म के प्रति जनता में रुचि उत्पन्न की जाय।

६. जैवकीय आधार पर आयोजना—

(क) विज्ञानों ने यह भी बतलाया है कि अपराधियों का बन्ध्यकरण (Sterilization) किया जाय ताकि वंशानुसंक्रमण के द्वारा अपराधी अधिक नहीं बढ़ें। यह सुझाव जनसंख्या की रोकथाम को दृष्टिकोण में रखते हुए ठीक है।

(ख) प्रत्येक नागरिक की नियमित रूप से शारीरिक परीक्षा हो ताकि कुछ शारीरिक दोष उत्पन्न हो रहे हों तो उसकी रोकथाम की जा सके।

प्रकरण का सारांश

१—अपराध की धारणा एवं अर्थ।

२—अपराध की परिभाषायें।

३—अपराध का वर्गीकरण।

४—अपराधियों का वर्गीकरण।

५—अपराध और अपराधियों का वर्गीकरण :

(१) निम्नवर्ग अपराधी।
(२) सफेदपोश अपराधी।
(३) जन्मजात अपराधी।
(४) पागल अपराधी।
(५) आकस्मिक अपराधी।
(६) भावोदवेग अपराधी।
(७) प्रथम अपराधी।
(८) पेशेवर अपराधी।
(९) अभ्यस्त अपराधी।

६—अपराध के कारण ।

(१) भौतिक कारण ।

(क) जलवायु ।

(ख) ऋतु ।

(ग) प्राकृतिक दशा ।

(२) व्यक्तिगत कारण ।

(क) संवेगात्मक अस्थिरता तथा संघर्ष ।

(ख) मानसिक दोष तथा रोग ।

(ग) शिक्षा ।

(घ) मद्यपान ।

(ङ) वैवाहिक स्थिति ।

(च) लिंग ।

(३) जैवकीय कारण ।

(४) आर्थिक कारण ।

(क) दरिद्रता तथा बेकारी ।

(ख) फसलों की दशा ।

(ग) नगरीयकरण ।

(घ) गंदी बस्तियाँ ।

(ङ) सिनेमा ।

(च) स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों का आधिक्य ।

(छ) मोटरकार व अन्य साधनों के द्वारा ।

(ज) नगरीय भीड़-भाड़ उत्पन्न करके ।

(झ) व्यापार व्यवसाय में मन्दी आना ।

(ञ) प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देकर ।

(५) सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारण ।

(क) दहेज प्रथा ।

(ख) बेमेल विवाह ।

(ग) देवदासी प्रथा ।

(घ) उत्सवों पर ।

(ङ) पारिवारिक विघटन के कारण ।

(६) अन्य कारण ।

(क) युद्ध ।

(ख) सांप्रदायिक दंगे ।

(ग) समाचार पत्र एवं पत्रिकायें ।

७—अपराधों की रोकथाम ।

(१) आर्थिक आयोजन ।

(२) छोटे उद्योगों को प्रोत्साहन ।

(३) विद्यार्थियों को प्रशिक्षण ।

(४) स्वास्थ्यप्रद भवनों का निर्माण ।

(५) सामाजिक और सांस्कृतिक आयोजना ।

(क) कानून के प्रति श्रद्धा निर्माण ।

(ख) अनिवार्य शिक्षा ।

(ग) धर्म के माध्यम से सुधार ।

(६) जैवकीय आधार पर आयोजना ।

अध्याय ७

बाल अपराध
Juvenile Delinquency

बाल अपराध की धारणा—

कानून की दृष्टि से अप्रत्यक्ष व्यवहारों की व्याख्या करने में मुख्य दो चीजों की आवश्यकता होती है। अपराधों की परिभाषा और उनकी सजा। कानूनी अदालतों में अपराधी को सजा देने के पहले कुछ शर्तों का पूरा किया जाना आवश्यक माना जाता है। अपराधी के विरुद्ध कुछ निश्चित आरोप लगाये जाँय और आरोपों को कानून की दृष्टि से परिभाषित किया जाये, जैसे कानूनी धाराओं का उल्लेख जिनके अन्तर्गत तथाकथित अपराध आता हो। आरोपों को किसी भी ठोस आधारों पर साबित किया जाये जिससे अपराधी किसी आधार का सहारा न ले सके। जब तक अदालत में अपराधी का अपराध प्रमाणित न हो जाय तब तक किसी बच्चे को अपराधी नहीं माना जा सकता। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से बाल अपराधी विघटित व्यक्तित्व वाला बच्चा है। **जिनका असामाजिक व्यवहार स्थापित कानूनी व्यवस्थाओं का सीधा उल्लंघन करता हो उन्हें बाल अपराधी कहा जाता है।** भिन्न-भिन्न देशों में बाल अपराधी की आयु भिन्न-भिन्न मानी जाती है। परन्तु साधारणतया उनकी आयु १७ वर्ष तक मानी जाती है। हमारे देश भारतवर्ष में ७ वर्ष से कम आयु के बच्चे अपराधी एवं दंडनीय नहीं माने जाते हैं। हमारे यहाँ ८३ धारा विधान के अनुसार ७ वर्ष से अधिक और १२ वर्ष से कम आयु वाले बच्चों को भी अपराधी नहीं माना जाता जो कि नासमझ और मन्दबुद्धि वाले होते हैं।

किशोर अधिनियमों (Childrens Act) में बाल अपराधियों की आयु १६ वर्ष निश्चित की गई है। पश्चिमी बंगाल, बम्बई, मद्रास, मध्यप्रदेश, मैसूर, दिल्ली, उड़ीसा, पूर्वी पंजाब तथा उत्तरप्रदेश में बाल अपराधियों के लिये नियम चालू हो चुके हैं। जिन राज्यों में अभी तक अधिनियम नहीं बने है या अभी तक चालू नहीं

हुए हैं वहां पर उनके लिये १८९७ का रिफार्मेटरी स्कूल्स अधिनियम (Reformatory Schools Act 1897) लागू है। रिफार्मेटरी स्कूल्स की आयु १४ वर्ष निश्चित की गई है।

बाल अपराध के कारण—

किशोर अपराध क्यों होते हैं इसका पता लगाने के लिये अनेक लोगों द्वारा अध्ययन किये गये हैं। बाल अपराध का कारण बच्चे की कोई एक कमी या असमर्थता नहीं है। परन्तु अनेक कारण ऐसे हैं जो बच्चे को अपराध करने की ओर प्रवृत्त करते हैं। १९७ अँगरेज बाल अपराधियों और ४०० गैर अपराधी बालकों का साइरिल वर्ट द्वारा एक क्षेत्र में अध्ययन किया गया। उनके अध्ययन का यह निष्कर्ष निकलता है कि गैर अपराधी और बाल अपराधियों का भेद अनेक कमियों और असमर्थनाओं द्वारा किया जा सकता है। लगभग प्रत्येक बाल अपराधी के पास चार या पांच कारण ऐसे मौजूद रहते हैं जो कि उसके अन्तःकरण पर खराब असर डालते हैं। फिर भी अन्तःकरण पर प्रभाव डालने वाले कारणों पर पर्याप्त रूप से प्रकाश पड़ता है जो बाल अपराध के कारण होते हैं।

१. परिवार सम्बन्धी कारण—

विघटित परिवार निम्नलिखित परिस्थितियों में होता है; (क) माता या पिता में से किसी एक की मृत्यु का होना, (ख) माता पिता के बीच सम्बन्ध विच्छेद का होना या विवाह विच्छेद का होना, (ग) पिता का जेल में होना या किसी सुधारात्मक संस्था में होना, तथा (घ) पिता का बहुत वर्षों से पीड़ित होने के कारण बेकार होना। ऐसी परिस्थितियों में बच्चों की अवहेलना होती है। बच्चों को खान पान के साथ माँ बाप का प्यार और स्नेह भी अत्यावश्यक होता है। लेकिन विघटन परिवारों में वे माँ बाप के प्यार तथा स्नेह से वंचित रह जाते हैं। चहारदीवारी में भी उचित समाजीकरण के लिये अनुकूल परिस्थिति का अभाव होता है जिसका असर बच्चों पर पड़ता है तथा उनके व्यक्तित्व का विकास उचित ढंग से नहीं हो पाता।[1] ऐसे परिवारों के बालक प्रायः बाल अपराधी बन जाते हैं। समाजशास्त्रियों ने तथा अपराधशास्त्रियों ने विघटित परिवार को बाल अपराध का प्रमुख कारण माना है। हेली एवं ब्रोना ने उनके अध्ययन में ऐसा पाया कि चार हजार बाल अपराधियों में से दो हजार बाल अपराधी विघटित परिवार के सदस्य थे।[2]

---

1. *Khare, P. N.* : "Slum Dwellers of Labherpura (Lashkar), 1960. (Unpublished report submitted to B. Y. S.)," Gwalior. PP. 2-4.
2. *Healy & Bronner* : 'Delinquents and Criminals, Their Making and Unmaking' PP. 121-125.

२. अनैतिक परिवार—

बच्चे अनुकरण एवं सुझाव ग्रहण के कारण ही उत्तरोत्तर विकास करते आये हैं। चहारदिवारी में यही अच्छा पर्यावरण हुआ तो बच्चे अच्छे नागरिक बन सकते हैं। जहाँ पर पिता बच्चों के सामने ही धूम्रपान, मद्यपान करता होगा या प्रत्येक शब्द में गाली गलोच करता हो तो बालकों के मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ता है। परिवार के अन्य सदस्य चाचा, मामा, फूफा, बड़ी बहन, बड़ा भाई, इत्यादि लोगों का आचरण, व्यवहार, रहन-सहन आदि बातों को बालक अत्यन्त सूक्ष्म रीति से ग्रहण करते हैं। यदि परिवार के ये बड़े सदस्य अनैतिक होंगे तो बालक भी उनके आचरणों को देखकर अनैतिकता की सीढ़ी चढ़ने लगेगा तथा बाल अपराधी बन जायगा।

३. बच्चे का अत्यधिक लाड़ प्यार—

जिस परिवार में एक ही बच्चा होता है तो माता पिता द्वारा उसका अत्यधिक लाड़ प्यार किया जाता है। कभी कभी माता पिता का प्यार इतना अन्धा हो जाता है कि वे बच्चे की हर फरमाइश पूरी करते हैं। यही कारण है कि बालक प्राय: चिड़चिड़े तथा हठीले हो जाते हैं। उन्हें अच्छे बुरे का ख्याल नहीं होता, उन्हें किसी भी व्यक्ति के द्वारा किसी भी कार्य के लिये रोका गया तो उनके मन में मानसिक संघर्ष होता है तथा वे अलग मनोवृति का निर्माण कर लेते हैं जिसके कारण समाज का अहित होता है और बच्चा जीवन के गलत मोड़ पर होता है। ऐसे बालक प्राय: बड़े होने पर अपने माँ बाप के प्रति उनका आदर खो बैठते हैं और मां बाप को भी भविष्य में पछताना पड़ता है।

४. सौतेली माँ या पिता—

लेखक के मतानुसार सौतेली माँ भारतीय समाज में एक सामाजिक संज्ञा बन गयी है। सभी सौतेली माताएं खराब नहीं होतीं। लेकिन अत्यधिक प्रकरणों में मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के कारण तथा पर्यावरण सम्बन्धी दोषों के कारण माता तथा बच्चों में स्नेह या प्यार उत्पन्न नहीं होता। बच्चे के मस्तिष्क में विपरीत भावना पैदा हो जाती है तथा वह सबसे घृणा करने लगता है और अपराधी वृत्ति को अपनाता है।

५. एकांकी अनुशासन—

प्राय: अनेक परिवारों में एकांकी अनुशासन होता है। इससे यह अर्थ होता है कि माता या पिता में से कोई एक अत्यन्त सख्त तथा एक अत्यन्त मृदु होता है। जिसके

कारण बच्चों पर बुरा असर होता है। कभी एक के द्वारा बालक से गल्ती होने की परिस्थिति पर डाटा जाता है तो कभी दूसरे के द्वारा प्यार किया जाता है और बालक के दोषों को छिपाने का प्रयास किया जाता है। कभी कभी तो माता पिता आपस में बुरी तरह उलझ जाते हैं और बच्चा एक तरह ही रह जाता है। ऐसी परिस्थिति में बच्चे पर खराब असर होता है। वह घर से बाहर जाकर अन्य लड़कों के साथ ऐसे कार्य करता है जो कार्य उसे अपराध की ओर ले जाते हैं। बच्चों का विकास नहीं हो पाता।

६. माता का घर से बाहर नौकरी करना—

श्री न्यूमेयर महोदय का कथन है कि जब माता दिन में ड्यूटी पर जाती है तथा पिता रात्रि में या दोनों रात्रि या दिन में कार्य पर जाते हैं तो बच्चे प्रायः सड़क की शरण लेते हैं। जबसे औद्योगीकरण तथा नगरीकरण तेजी से होना प्रारम्भ हुआ है तब से भारतीय स्त्रियाँ घर से बाहर नौकरी के लिये जाने लगी हैं। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् तथा देश की स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में अनेक उद्योगों में, मिलों में, फैक्टरियों में, अस्पताल, स्कूल, महाविद्यालय एवं सरकारी तथा गैर सरकारी-कार्यालयों में स्त्रियाँ कार्य कर रही है। बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, पूना, इन्दौर, अहमदाबाद आदि बड़े बड़े नगरों में नौकरी करने वाली स्त्रियों की संख्या अधिक है। वे आधुनिक समाज में जीवनस्तर को बनाये रखने या जीवनस्तर को ऊँचा उठाने के लिये अनेक कार्य कर रही हैं। इन्दौर में सब तरह की स्त्रियाँ कार्य कर रही है। अधिकतर माता कार्यकर्ताएँ निम्न तथा निम्न-मध्य वर्ग की सदस्या हैं, जिनका निवास स्थान प्रायः गन्दी बस्तियों तथा अस्वास्थ्यप्रद स्थानों में है। जिनके घर के बाहर कार्य का समय भी अधिक है। ऐसी माताओं के बच्चे प्रायः बुरे पर्यावरण में पल रहे हैं जिनकी शिकायतें नित्य प्रति होती हैं। और वे बालक अपराधी-वृत्ति को ग्रहण कर रहे हैं।[1] इससे स्पष्ट है कि यह बाल अपराध का महत्वपूर्ण कारण है।

७. तिरस्कृत बच्चे —

जब किसी परिवार में अधिक बच्चे होते हैं, तो कुछ बच्चे माता-पिता या परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा तिरस्कृत किये जाते हैं। ऐसे बालकों का भगवान ही मालिक होता है। वे तिरस्कार करने वालों के सामने कभी नहीं आना चाहते। उनका मानसिक सन्तुलन बिगड़ जाता है तथा वे समाज विरोधी व्यवहार करने को उत्सुक हो जाते हैं।

1. *Khare, P. N.* : "A Study of the Working Mothers of Indore City". (The problem is still under research.)

८. निम्न वर्ग के परिवार—

निम्नवर्ग के पास विशेषत: भारतवर्ष में खाने पीने का तथा मकान का अभाव होता है। परिवार में सदस्यों की संख्या अधिक होती है जिसके फलस्वरूप समस्त बच्चों की ओर ठीक प्रकार से ध्यान नहीं दिया जाता। मजदूर वर्ग के माता पिता अपने कार्य में व्यस्त होते हैं तथा अवकाश के समय में जुआघर या मद्यगृह में जाते हैं। ऐसे परिवार के बालक प्राय: अपराधी हो जाते हैं।

९. अत्याधिक भीड़ भाड़—

डॉ० सेथना ने अत्याधिक भीड़ भाड़ को बाल अपराध का प्रमुख कारण माना है। प्राय: नगरों में निवास स्थान की कमी और अत्याधिक भीड़ भाड़ होती है। लेखक ने अपने शोधकार्य में मालूम किया कि एक ही कमरे में ८-८, १०-१० व्यक्ति रहते हैं। ऐसे परिवारों में बालक वह दृश्य देखते है तथा सुनते हैं जो उन्हें नहीं देखना तथा सुनना चाहिये। अत्याधिक भीड़ भाड़ के कारण वे बालक गन्दे नालों में पलते हैं, धूल से भरे होते हैं और ऐसे दिखाई पड़ते है जैसे हरिजनों की बस्ती के सूअर के बच्चे—गन्दगी से भरे हुए।[1] इस प्रकार अत्याधिक भीड़ भाड़ बाल अपराधियों का उत्पादक घटक तत्व है।

१०. निर्धनता—

अपराधशास्त्रिओ ने निर्धनता को बाल अपराध का मुख्य कारक माना है। बालक अपने पड़ोस में, स्कूल में, तथा खेल के मैदानों इत्यादि अनेक समूहों में खेलता है तथा उसके सम्पर्क में अनेक बच्चे आते है। ये बच्चे मध्यवर्ग तथा उच्चवर्ग के भी होते है। ये अच्छे कपड़े पहिनते है। अच्छी वस्तुओं का सेवन करते हैं। इन बच्चों को देखकर निर्धन बच्चों के मन में प्रतिक्रिया होती है। वे परिवार में आकर माता पिता से अच्छी-अच्छी वस्तुओं की मांग करते हैं और न मिलने पर अवैध तरीकों से प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। निर्धन माता पिता बच्चों को अच्छी शिक्षा नही दे पाते। ये बच्चे प्राय: गन्दी बस्तिओं मे खेलते है। यह कदापि नहीं कहा जा सकता कि समस्त निर्धन बच्चे अपराधी होते है। उसके साथ हमें अन्य कारकों का भी विचार करना आवश्यक है। बाल अपराध का कोई एक कारण नहीं है।

---

1 Khare P. N, : "Socio-Economic Analysis of Families of Children Attending Montessori Schools—(Indore—1957)." (Thesis submitted for M. A. Final Ex.) P. 63.

(२) व्यक्तिगत कारण

१. शारीरिक और मानसिक दोष—

शारीरिक तथा मानसिक दोष किसी बालक पर प्रत्यक्ष रूप से असर नहीं डालते परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से वे बच्चों पर अवश्य ही समुचित रूप से प्रभाव डालते हैं। शारीरिक व मानसिक दोषों के कारण वे स्कूलों में पढ़ाई में पीछे रह जाते हैं और बार बार फेल होते हैं। शारीरिक और मानसिक अस्वस्थता के कारण खेल-कूद व्यायाम आदि बातों में भी वे पीछे रह जाते हैं और ऐसी परिस्थिति में वे अपनी उन्नति नहीं कर पाते। बच्चे अपनी स्वतः की कमजोरी से पूर्णतः परिचित रहते हैं। वे अपनी कमजोरी को दूर निकालने का भरसक प्रयत्न करते हैं। बालक अनेक असामान्य व्यवहारों के द्वारा इन कमियों को पूरा करने का प्रयत्न करता है।

जो बच्चे काने, अन्धे, लूले, बहरे होते हैं या अन्य शारीरिक विचार से पीड़ित होते हैं—समाज द्वारा तिरस्कृत होते हैं जिनका असर उनके मानसिक सन्तुलन पर होता है। वे अपने में कुछ कमी को महसूस करते हैं तथा इस कमी को दूर करने के लिये साहसी कार्य करते हैं और अपराधी बन जाते हैं।

२. संवेगात्मक अस्थिरता—

कुछ विद्वानों ने संवेगात्मक अस्थिरता को इसका प्रधान कारण माना है। उनका कहना है कि कुछ बालकों की इच्छाएँ पूर्ण न होने से उनका मानसिक सन्तुलन बिगड़ जाता है। उनके व्यक्तित्व विकास में बाधा उत्पन्न हो जाती है। सर्व श्री हेली तथा ब्रोनर ने अपने अध्ययन में मालूम किया कि बाल अपराधियों में निम्न-लिखित प्रकार होते हैं।

(अ) परिवार में पक्षपात की भावना (ब) पारिवारिक जीवन, पड़ोस, स्कूल इत्यादि मे हीनता की भावना (स) स्नेह और ममता की कमी की भावना (द) असुर-क्षित अत्याधिक तिरस्कृत तथा हीन होने की गलत धारणा तथा अपर्याप्त जीवन की भावना।

३. पैतृकता—

माता पिता द्वारा बालकों को कुछ ऐसे गुण प्राप्त होते हैं जिसके कारण उनकी अपराधी प्रवृत्ति होती है। प्रथम तो वे प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर नहीं होतीं तथा अच्छे पर्यावरण में कुछ समय तक उन अपराधी प्रवृत्तियों का लोप हो जाता है। कभी-कभी बुरा पर्यावरण हो जाने पर या बुरी संगत होने पर बाह्य कारण द्वारा प्राप्त तत्व उमड़ पड़ते है।

४. गूँगे और बहरे—

इन बालकों में न्यूनता का भाव होता है। समूह के अन्य बालक इनकी चेष्टा करते है जिसके कारण ये बालक एकान्त में रहना पसन्द करते हैं और अपराधी वृत्ति को बना लेते हैं।

५. अतिविकसित शरीर वाले बालक—

कुछ बालक अतिविकसित शरीर वाले होते है। उनमें उत्तेजना अत्याधिक पाई जाती है। यह यायराईड स्वभावों की अत्याधिकता का परिणाम है। ऐसे बालक मनोरंजन के लिये अपराध करते हैं, जैसे किसी के मकान के ऊपर पत्थर फेंकना, कांच तोड़ना, फलों की चोरी करना, अपने साथियों को मारना, जानवरों को पीटना इत्यादि। आगे चल कर यह प्रवृति गम्भीर अपराधी व्यवहार की ओर बढ़ती है।

६. कम विकसित शरीर वाले बालक—

कुछ ग्रंथियों की खराबी के कारण कुछ बच्चों का शारीरिक तथा मानसिक विकास रुक जाता है। ऐसे बच्चो की समाज, परिवार, स्कूल, पड़ोस आदि समूहों के द्वारा अवहेलना की जाती है। इन बालकों में समाज के अन्य सदस्यों के प्रति घृणा एवं शत्रुता की भावना उत्पन्न हो जाती है तथा वे जबरदस्ती अपराध की सीढ़ी के पास पहुँच जाते हैं।

७. गिरा हुआ स्वास्थ्य—

अधिक समय तक बीमार रहने के कारण स्वास्थ्य गिर जाता है और बच्चों में चिड़चिड़ापन आ जाता है। परिवार के सदस्यो का कहना उनके हित में होता है परन्तु उनकी समझ में नहीं आता और वे सदस्यों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं और अवसर मिलने पर ऐसे कार्य करते हैं जो समाज विरोधी होते हैं।

८. हीनता की भावना—

परीक्षा में फेल होने से, खेल कूद मे नम्बर न आने से, लड़कियों के सामने अपमान होने से, तथा अन्य दूसरे कार्यो में सफल न होने से बालकों में हीनता की भावना घर कर लेती है जिसका प्रतिशोध उन्हें अपराध की ओर ले जाता है।

९. अहंभावना—

बच्चों में यदि अहंभावना का अत्याधिक विकास हुआ तो वे मनमाने कार्य करने लगते है। अहंभावना के अपराधी अधिकतर उच्च वर्ग के होते है तथा उच्च वर्ग के बालक अपना स्तर बनाये रखने के लिये चोरी करते है। जैसे, पिता की जेब से रुपये चुराना, बहिन का सोने का हार चुराना इत्यादि।

१०. मन्द बुद्धि—

डॉ० सेथना ने मन्दबुद्धि को भी एक अपराध का कारण माना है। अपराध शास्त्री अन्य कारकों के साथ मन्दबुद्धि को भी अपराधी बनाने वाला एक कारक मानते हैं। मन्दबुद्धि वाले बालकों को विवेक नही होना तथा वे अच्छे बुरे की परख करना नहीं जानते। वे नही जानते कि एक झोंपड़ी मे आग लगादी जाय तो क्या होगा। लेखक को मध्यप्रदेश के एक ग्राम में देखने में आया कि एक मन्दबुद्धि वाले बालक के खलिहान में माचिस से आग लगाने के फलस्वरूप भारी क्षति पहुँची। इस प्रकार स्पष्ट है कि मन्दबुद्धि वाले बालक समाज विरोधी कार्य करने के प्रभाव में शीघ्र आ जाते हैं। अपराधियों के गिरोह ऐसे बालक की प्रतीक्षा में रहते हैं तथा उनसे मदद लेते हैं।

(३) सामाजिक कारण

१. गन्दी बस्तियाँ—

गन्दी बस्तियाँ मानव समाज के लिये कलंक हैं। गन्दी बस्तियों के कारण ही बाल अपराध का जन्म होता है। इन बस्तियों में अस्वास्थ्यप्रद, हीन एवं निम्नकोटि का पर्यावरण होता है। मद्यपान करके नित्यप्रति लोग इन बस्तियों में घूमते है। स्त्रियों का अपमान होता है तथा उन्हें अपमानित किया जाता है। इन बस्तियो मे बालकत्व को शैशव काल से ही विषपान कराया जाता है। ये बस्तियाँ बच्चो के स्वस्थ विकास के लिये कदापि सुरक्षित नही होतीं।[1]

२. अस्वास्थ्यप्रद पर्यावरण—

अपराध के अध्याय में हम लिख चुके हैं कि जितनी तेजी से औद्योगीकरण एवं नगरीकरण होगा उतनी ही तेजी से अपराध होंगे। नगर में अनेक उद्योग प्राप्त होने के कारण ग्रामीण लोग भारी मात्रा में नगरों की ओर आकर्षित हो रहे हैं। बिना आयोजना के गली कूचों में अनेक मकान खड़े होगये हैं। अहमदाबाद में तथा बम्बई में लोग मोटर गैरेजों में तथा फड़ों के नीचे के हिस्से में रहते हैं। लाखों व्यक्तियों को तो आज भी फुटपाथ पर सोना पड़ता है। अपर्याप्त भूमि तथा अन्य नगरीय दोषों के कारण यह स्थान स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यन्त दयनीय है। शारीरिक विकृति के साथ मानसिक विकृति भी उत्पन्न हो रही है। आधुनिक युग में यह कारण बाल अपराध से सम्बन्धित है।

---

१. विस्तारपूर्वक अध्याय १० मे पढ़िये।

३. बदनाम गलियाँ—

नगरों के विकास के साथ-साथ वेश्या व्यवसाय को भी बढ़ावा मिला है। प्रत्येक नगर में वेश्याओं का विशिष्ट क्षेत्र होता है। अनेक व्यक्ति जो इस व्यवसाय में दलाल (Pimps) का काम करते हैं, उनके बच्चे तथा वेश्याओं के बच्चे अधिकांश बाल अपराधी रहते हैं। इस क्षेत्र के अन्य बच्चों पर उनका असर पड़ता है। क्योंकि इस क्षेत्र में मध्यवर्ग एवं निम्नवर्ग के लोग भी रहते हैं। ग्वालियर तथा आगरे में ये बस्तियाँ शहर के मध्य में हैं जहाँ पर अन्य लोग भी रहते हैं। इस प्रकार से बदनाम गलियाँ बाल अपराधियों को जन्म देती हैं।[1]

४. बुरी संगत—

बुरी संगत से भी बच्चे आवारा और अपराधी बन जाते हैं। बच्चों का अनेक समूहों के साथ सम्बन्ध होता है। न्यूमेयर महोदय बुरी संगत को अत्याधिक महत्वपूर्ण कारक मानते हैं। उनके मतानुसार बच्चा अकेला कभी भी अपराध नहीं करता। साथियों का ही उसके व्यवहार पर असर होता है, जो समाज विरोधी व्यवहार करते हैं।

५. स्कूल का पर्यावरण—

आजकल स्कूलों में अनुशासन का अभाव होता है। अनेक शिक्षक ऐसे हैं जो स्वयं अनुशासन नहीं जानते। वे प्रशिक्षित भी नहीं होते हैं। अभी भी भारतीय स्कूलों मे पर्याप्त साधनों का अभाव है, जिसके कारण बालकों की शिक्षा के प्रति रुचि नहीं होती, वे स्कूल छोड़कर भागने लगते हैं। इस भागने की क्रिया को बाल अपराध की ओर प्रवृत होने का प्रथम चरण माना गया है। प्रायः यह देखने में आता है कि बालक स्कूल छोड़कर घर नहीं जाते। एक बात को छिपाने के लिये दस बाते झूठ बोलते हैं तथा अपराधी वृति को अपना लेते हैं।

६. मनोरंजनों के साधनों का अभाव—

भारत मे अभी भी मनोरंजन के साधनों का अभाव है। कहावत है कि शून्य मस्तिष्क शैतान का घर होता है, बिलकुल सत्य है। बच्चों को अवकाश के समय मे खेलकूद, संगीत आदि की रुचि उत्पन्न न की जाय तो वे अपराधी वृति के हो जाते हैं। अच्छा पर्यावरण चहारदीवारी के बाहर तथा भीतर होना आवश्यक है।

---

१. स्मरण रहे कि इस व्यवसाय के विरुद्ध कानून बन गया है, फिर भी यह व्यवसाय अभी भी गुप्त रूप से चल रहा है। विस्तृत अध्ययन के लिये अध्याय ८ पढ़िये।

यदि बालकों के अवकाश के समय का दुरुपयोग हुआ तो उनका मस्तिष्क शैतान का घर हो जाता है और वे अनेक समाज विरोधी कार्य करने लगते हैं।

७. **युद्ध—**

युद्ध के समय में माता पिता तथा बच्चे के संरक्षक अत्याधिक व्यस्त होते है। बच्चों की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया जाता। उनके व्यवहार को कोई रोकटोक करने वाला नहीं होता। वे स्वतन्त्र एवं स्वच्छंद हो जाते हैं। इन परिस्थितियों में बाल अपराध की दरें बढ़ जाती हैं।

युद्ध काल में तथा उत्तर युद्ध काल में आर्थिक स्तर गिर जाने के कारण सारे देश में दरिद्रता और वेकारी फैल जाती है। सामाजिक तथा राजनैतिक व्यवस्था का अन्त होता है जिस कारण अपराधी प्रवृतियाँ पनपती हैं।

८. **पिता का सदैव दौरे पर रहना—**

जिन व्यक्तियों को प्रशासकीय सेवाओं में तथा व्यापार व्यवसाय में होकर सदैव दौरे पर रहना पड़ता है उनके बच्चों पर उनका नियन्त्रण ढीला रहता है। यदि माता भी घर के बाहर नौकरी करती है तो बच्चे पूर्ण रूप से स्वतन्त्र रहते है। लड़कियों को भी स्वच्छंदता से घूमने फिरने को मिलता है। वे नियन्त्रण के परे होती हैं, और जब ये बालक बुरी संगत में फँस जाते हैं तो इन्हें सम्भालने वाला कोई नहीं रहता।

९. **कठोर शिक्षक—**

बहुत से शिक्षक बालकों के साथ अति कठोर व्यवहार करते हैं जिस कारण बालक शिक्षक से घृणा करने लगता है। वह स्कूल छोड़कर भाग जाता है। कभी-कभी उसकी यह घृणा बदला लेने की भावना से प्रेरित हो जाती है। जिसकी सीमा हत्या तक हो सकती है।

१०. **बालकों का अल्प आयु में नौकरी करना—**

प्रायः नगरों के सस्ते होटलों में आठ से चौदह वर्ष के बालक बैरा के रूप में कार्य करते है तथा बहुत से बालक एवं बालिकाएँ अन्य जगह पर अकेले या माता पिता के साथ नौकरी करते हैं। इन बालकों को अच्छे बुरे की पहिचान नहीं होती तथा वे अपरिपक्व होते हैं। इनका सम्पर्क अनेक व्यक्तियों के साथ आता है जिनमें शराबी भी होते है और बदमाश भी होते हैं। प्रायः यह देखने में आया है कि सस्ते होटलों में कार्य करने वाले बालक छोटे स्तर पर चोरी करते है।

कलकत्ता, बम्बई, देहली में जो गुप्तरूप से दुराचार चलते रहते हैं उनमें भी अनेक बालक कार्य करते है जिनके मस्तिष्क पर पर्यावरण का बुरा असर होता है। वे अपराधी वृत्ति की ऊपरी सीढ़ी तक पहुँचते हैं।

(४) अन्य कारण

१. सस्ता साहित्य—

प्रायः नगरों में सेक्स के सम्बन्ध में सचित्र साहित्य की भारी मात्रा में मांग होने के कारण विपुलता होती है। अभी-अभी समाचारपत्र तथा पत्रिकाएँ आदि में भी कामोत्तेजक तस्वीरें एव कहानियाँ प्रकाशित होती है जिसका असर बालकों के मस्तिष्क पर पड़ता है और वे योनि सम्बन्धी अपराध करते है।

२. सिनेमा—

भारत में सिनेमा ही सबसे सस्ता मनोरंजन का साधन माना जाता है तथा बड़े-बड़े नगरों में सुवह १० बजे से रात्रि के १ बजे तक सिनेमा चलता रहता है। शिक्षाप्रद एवं अच्छी फिल्में बहुत कम बन पा रही है। अधिकतर फिल्मों में प्यार एवं प्रणय स्वच्छंद रूप से बताया जाता है। अपराधी चलचित्र भी भारी मात्रा में बन रहे हैं। सिनेमा सगीत में लोगों की एकमात्र रूचि रह गई है। आधुनिक समय में एक भी गीत ऐसा नही है जिसमें प्यार, मोहब्बत, दिल और बालम ये शब्द न मिलते हों। भारतवर्ष में सेन्सर बोर्ड द्वारा दो तरह का प्रमाणपत्र चलचित्रों को दिया जाता है (१) केवल वयस्कों के लिये, (२) सबके लिये। ऐसा होते हुए भी जो चलचित्र सबके लिये मान्य नहीं है उसके पोस्टर्स सर्वत्र लगाये जाते हैं। अपरिपक्व बालकों पर इसका बुरा असर होता है। इस प्रकार चलचित्र विशेषतः अपराधी चलचित्र एव रोमांस पर आधारित चलचित्र बाल अपराध के लिये उत्तरदायी हैं।

बाल अपराध को कम करने के उपाय

बाल अपराध को तत्काल समाप्त नहीं किया जा सकता क्योंकि बाल अपराध का कोई एक कारण नहीं है। अनेक कारकों का हमारे सामाजिक जीवन पर प्रभाव पड़ता है। जैसे-जैसे उद्योगीकरण एवं नगरीकरण हो रहा है वैसे-वैसे बाल अपराधियों की संख्या तीव्र गति से बढ़ रही है। एक कल्याणकारी राज्य के लिये यह चुनौती है। बाल अपराधियों की संख्या में हमें कमी करना होगी। धीरे-धीरे इसे समूल नष्ट करने के उपायों को ढूँढना पड़ेगा। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित सुझाव दिये जा रहे हैं।

१. पारिवारिक जीवन मे सुधार—

परिवार समाज की एक महत्वपूर्ण इकाई है। बालक अधिक समय तक परिवार की चहारदीवारी के भीतर ही रहता है। अतः चहारदीवारी के अन्दर का पर्यावरण इतना अनुकूल होना चाहिये जिससे उसका उचित ढंग से समाजीकरण और व्यक्तित्व का विकास हो सके। इसके लिये सर्व प्रथम यह आवश्यक है कि माता

पिता दोनों ही शिक्षित हों, तथा उनका व्यवहार बालक के प्रति ऐसा होना चाहिये कि बालक के मस्तिष्क में माता पिता एवं परिवार के अन्य सदस्यों के प्रति सदैव प्यार बना रहे। प्रत्येक प्रसंग पर उसकी गलतियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करके तथा उसे समझने, सीखने, और सुधरने के लिए समुचित अवसर देना अति आवश्यक है। इसके लिये माता पिता को अपना स्वयं का आचरण भी शुद्ध रखना अति आवश्यक है। बच्चे को जन्म से ही दाया के पास तथा कुछ दिन के उपरान्त घर के बाहर किसी रिश्तेदार के यहाँ या छात्रावास में नहीं रखना चाहिये। शैशव काल में घर ही सर्वोत्तम स्थान रहता है। बालक के पहिले ६ वर्ष माता ही बालक की शिक्षिका होती है। इसके लिये माता का शिक्षित होना आवश्यक है। शिक्षित माता ही शिक्षित घर है। यह भी आवश्यक है कि बच्चों के लालन-पालन की कला माता-पिता को अवगत हो। बच्चों के व्यवहार तथा अनुशासन में माता-पिता को एक मत से निर्णय लेना आवश्यक है।

२. **सामाजिक तथा आर्थिक आयोजन—**

प्रत्येक देश में बालक जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग होता है। बालक सामाजिक संगठन की ईंटें हैं, जो राष्ट्रभवन का निर्माण करती हैं। आज का बालक ही कल की पीढ़ी का माता-पिता है। उनके समाजीकरण एवं व्यक्तित्व के विकास के लिये समुचित व्यवस्था करना सरकार का परम कर्तव्य है। आधुनिक समाज में परिवार के अनेक कार्य राज्य एवं अन्य सेवाभावी संस्थाओं ने अपने पास ले लिये हैं। सरकार तथा अन्य सेवाभावी संस्थाओं को चाहिए कि जो कार्य उन्होंने अपने सिर पर लिये हैं, उसे जिम्मेवारी से निभावे। सरकार को चाहिए कि वह प्रत्येक बालक के सम्बन्ध में पारिवारिक रूप से जानकारी प्राप्त करे तथा एक ऐसे पर्यावरण का निर्माण करे, जो किसी भी परिवार को बच्चे के विकास मे कोई बाधाएं उत्पन्न न कर सके। पारिवारिक रूप से बच्चों को आर्थिक सहायता दी जाय। सरकार द्वारा हर मुहल्ले में शारीरिक शिक्षा, सामाजिक शिक्षा, धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा आदि के केन्द्र स्थापित किये जाने चाहिये। इस सम्बन्ध में समाज कल्याण बोर्ड का कार्य सराहनीय है। समाजशास्त्र के विद्यार्थियों को भी इस विषय पर अनुसंधान करना चाहिये।

३. **मनोवैज्ञानिक कारण—**

बाल अपराधों के अनेक कारणों को देखते हुए अपराध शास्त्रियों ने बताया है कि मनोवैज्ञानिक अस्पतालों का निर्माण होना चाहिए। इन अस्पतालों में बालकों का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन किया जाकर उनकी मानसिक खराबियों को दूर

किया जा सकेगा। मानसिक सन्तुलन बिगड़ जाने से अपराधी प्रवृति की ओर बढ़े हुए बालकों का उपचार किया जाकर पुनश्च मानसिक सन्तुलन उन्हें प्राप्त हो सकेगा। बच्चों के व्यक्तित्व विकास तथा चरित्र का समुचित रूप से विकास हो सकेगा। परिवार, स्कूल तथा अन्य समूहों में भी बालक का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन किया जाना चाहिये।

४. स्वस्थ मनोरंजन के साधन—

लेखक ने अपने स्वयं के अध्ययन में देखा कि माता-पिता को बच्चों की ओर ध्यान देने का समय नहीं मिलता है। बालक चाहें जहाँ खेलकूद में लगे रहते हैं। माता पिता यदि उन्हें नगर के उद्यानों में घूमने तथा रिश्तेदारों के यहाँ अवकाश के समय में ले जाते रहें तो उचित होगा। बच्चों के विकास के लिये स्वस्थ मनोरंजन तथा वरिष्ठ व्यक्ति की देखरेख होना अनिवार्य है। प्रत्येक मोहल्ले में बाल उद्यानों का होना अति आवश्यक है। इन्दौर नगर में नगर निगम द्वारा इस बात की ओर ध्यान दिया जा रहा है। इसके साथ साथ अवकाश के समय में बाल तथा प्रौढ़ एवं वृद्ध लोगों के लिए स्वस्थ मनोरंजन के साधन उपलब्ध हों।

५. अन्य उपाय—

१. निवास स्थान के सम्बन्ध में योजना।
२. गन्दी वस्तियों को हटाना तथा उसके दोषों को दूर करना।
३. परिवार नियोजन का प्रचार किया जाना चाहिये।
४. प्रारम्भ से सह-शिक्षा की योजना।
५. बच्चों में आत्मनिर्भरता, ईमानदारी एवं अहम की भावना का विकास करने के लिए नैतिक शिक्षा का प्रचार विद्याभवन, उदयपुर में किये गये आधार पर किया जाय।
६. रोमांस से परिपूर्ण और अपराधी चलचित्रों को तत्काल बन्द किया जाय।
७. माता-पिता को लालन-पालन की कला सिखाने के लिए प्रत्येक मोहल्ले में केन्द्र खोले जाँय।
८. निम्नस्तर के बच्चों को आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र एवं आत्मनिर्भर बनाने के लिए लघु उद्योगों का प्रचार हो, तथा प्रशिक्षण के केन्द्र खोले जाँय।
९. माताओं को जिनके बच्चे कम से कम ८ वर्ष के नहीं हो जाते तब तक घर से बाहर काम करने नहीं जाना चाहिये।

१०. स्कूलों में बच्चों के समाजीकरण एवं व्यक्ति विकास के लिए प्रशिक्षित अध्यापक हों।

प्रकरण का सारांश

१—बाल अपराध की धारणा।

जिनका सामाजिक व्यवहार स्थापित कानूनी व्यवस्थाओं का सीधा उल्लंघन करता है उन्हें बाल अपराधी कहा जाता है।

२—बाल अपराध के कारण।

१. परिवार सम्बन्धी कारण—१०।
२. व्यक्तिगत कारण—१०।
३. सामाजिक कारण—१०।
४. अन्य कारण—१०।

३—बाल अपराध को दूर करने के उपाय।

१. पारिवारिक जीवन में सुधार।
२. सामाजिक तथा आर्थिक सुधर।
३. मनोवैज्ञानिक प्रयत्न।
४. स्वस्थ मनोरंजन की सुविधाएँ।
५. अन्य उपाय।

अध्याय ८

वेश्या व्यवसाय

Prostitution

वेश्या व्यवसाय उतना ही प्राचीन है जितना कि मानव समाज। आज के मानव सभ्यता के युग मे वास्तव में यह सुखी पारिवारिक जीवन को चुनौती है। नगरीय समाजशास्त्र के विद्यार्थियों को समझना चाहिये कि यही प्रमुख नगरीय समस्या है।

वेश्या व्यवसाय की धारणा—

(१) वेश्या व्यवसाय स्त्री, पुरुषों का अनुचित योनि सम्बन्ध है जिसमें पुरुष द्वारा स्त्री को धन दिया जाता है।

(२) प्रेमी, प्रेमिका का योनि सम्बन्ध वेश्या व्यवसाय नहीं है क्योंकि वेश्या व्यवसाय में एक दूसरे के प्रति प्रेम तथा आत्मीयता नहीं होती। परन्तु प्रेमी, प्रेमिका में एक दूसरे के प्रति प्रेम तथा आत्मीयता होती है।

(३) इसकी उत्पत्ति मनुष्य की योनि सम्बन्धी तृष्णा के कारण ही हुई है। अतः वेश्या व्यवसाय के लिये "पुरुष" ही उत्तरदायी है।

(४) स्त्री, पुरुषों के योनि सम्बन्ध में पुरुष ही प्रभावक कारक है। स्त्री अपने सौंद से पुरुष को प्रभावित करती है।

(५) प्रायः यह देखने में आता है कि व्यापारिक सगठन सुन्दरियां को नौकरियों पर रख लेते हैं तथा उनके सौंदर्य के माध्यम से आर्थिक लाभ प्राप्त करते हैं।

(६) वेश्या व्यवसाय में योनि सम्बन्धों का महत्व है तथा सम्बन्ध ही स्वयं साध्य है।

अतः वेश्या व्यवसाय वह व्यवसाय है जहाँ स्त्री, पुरुषों का अनुचित योनि सम्बन्ध हो तथा इस अनुचित सम्बन्ध के बदले में स्त्री मूल्य प्राप्त करती हो जो धन या किसी वस्तु के रूप में हो। यह व्यवसाय संगठित होता है जिसके लिये वेश्यालय (Brothel) तथा अनेक दलाल (Pimps) कार्य करते हैं।

बर्गेल ने अपनी पुस्तक नगरीय समाजशास्त्र में लिखा है कि "वेश्या वह विघटित व्यक्ति है जो अंत में जनता का भार बन जाती है। अस्पताल में एक मरीज, अन्य सेवाभावी संस्थाओं में एक रोगी, तथा जेल में एक कैदी बनकर रहती है। वास्तव में वेश्या वह व्यक्ति है जो व्यवसाय करने के पहले से ही विघटित रहती है तथा बिना उपचार के सीधे रास्ते पर नहीं आती। वेश्या व्यवसाय का प्रमुख तत्व यह है कि वह अपने ग्राहकों पर आर्थिक दृष्टि से निर्भर होती है। विशेषतः नगरीय समाज में वेश्यावृत्ति को अधिक बढ़ावा मिला है। जिसका प्रमुख कारण यह है कि हममें परिपक्वता तो जल्दी आती है लेकिन विवाह देरी से होते हैं। आदिम समाजों में योनि परिपक्वता एवं प्राथमिक योनि अनुभव दोनों का समय एक ही हुआ करता था। परन्तु आधुनिक नगरीय समाज में जब तक व्यक्ति इस परिस्थिति में न आ जाय कि वह कमाने योग्य है वह विवाह नहीं करता। देरी से विवाह होने के कारण मानसिक संघर्ष होता है जिसे बहुत कम लोग बर्दाश्त कर पाते हैं।

आधुनिक समाज में स्थाई रूप से अविवाहित व्यक्ति ही वेश्याओं के ग्राहक बन बैठे हैं। इनकी संख्या में तलाक शुदा एवं विधुर व्यक्तियों की वृद्धि हो रही है; संयुक्त राज्य अमेरिका में व्यापारी यात्री इन ग्राहकों में वृद्धि कर रहे हैं।

स्त्री-पुरुषों के अनुचित सम्बन्धों को दो तत्वों ने अधिक बढ़ावा दिया है। (१) परिवार नियोजन के साधनों की उपलब्धि (२) स्त्रियों की आर्थिक आत्मनिर्भरता या उनका घर से बाहर रहकर कार्य करना। बर्गेल ने ठीक ही लिखा है "At any rate, sex relations between reputable women and men are increasing."

बाबर ने अपनी पुस्तक "मैरेज एण्ड द फेमिली" (Marriage and the Family) में लिखा है कि वेश्या व्यवसाय त्रिक्रियात्मक है—(१) पुरुषों की सतत योनि सम्बन्धी तृष्णा ग्राहक प्रदान करती है। (२) आर्थिक लाभ की प्रबल इच्छा वेश्याएँ निर्मित करती है। (३) मध्यस्थ, जो ग्राहकों एवं विक्रेता को एक साथ लाते है, सौदा एवं व्यवस्थापन के बदले लाभ का अवसर पाकर कार्य करते हैं।

समाजशास्त्र के शब्द कोष के अनुसार "योनि सेवाओं का क्रय जिसमें प्रायः स्त्रियाँ होती हैं ..."। इन स्त्रियों के द्वारा अनेक कार्य किये जाते हैं जो सामान्य कामतृप्ति से लेकर विशेष प्रकार के योनि जीवन तक सीमित होती हैं। सामान्य रूप से वेश्या व्यवसाय एक सौदा है जिसमें अनैतिकता की अदल-बदल होती है। एक वेश्या स्वतंत्र रूप से व्यवसाय कर सकती है। आमंत्रित करने पर प्राप्त हो सकती

है अथवा वेश्यालयों में अनेक वेश्याओं के साथ प्राप्त की जा सकती है। कुछ पूर्वी देशों में संस्थात्मक रूप से हैं। पश्चिमी देशों में यह व्यवसाय कुछ नियंत्रण के साथ खुला है जिसमें पुलिस का प्रबंध होता है अथवा कानून के ढिलाई के कारण अवैध प्रस्थिति होते हुए भी जीवित है।

प्राचीन भारत में वेश्यावृत्ति का रूप

देवदासी प्रथा—

भारतवर्ष एक महान धार्मिक देश है। कुंवारी कन्याओं को देवदासी बनाकर मंदिरों में रखा जाता था। विश्वनाथ एवं सारनाथ के मंदिरों में ५०० ऐसी लड़कियाँ थीं जो नाचने एवं गाने का कार्य करती थीं। इन लड़कियों का कार्य दर्शकों को नृत्य दिखाकर एवं गाकर उनका मनोरंजन करना था। तीसरी शताब्दी में राजाओं एवं बड़े-बड़े सरदारों के पास अनेक आकर्षक युवतियाँ होती थीं जो चौरी वाली (Chori Bearers) कहलाती थीं तथा इन लोगों की सेवा करती थीं। डॉ० अलतेकर ने लिखा है कि "लोग अपनी स्वयं की पत्नी से कभी संतुष्ट नहीं होते हैं तथा अन्य स्त्रियों की ओर आकर्षित होते हैं।" जिससे इस प्रथा को प्रोत्साहन मिला है। आज भी दक्षिण भारत में कुछ अंशों में इसकी उपलब्धि है। बौद्ध और जैन धर्म के अनुसार भी युवतियों को धर्म के कार्य के लिये अविवाहित रहना पड़ता था। इनमें से कई युवतियाँ वेश्याएँ बन गईं तथा बौद्ध मठ व्यभिचार के अड्डे बन गये थे। भारतीय प्राचीन मन्दिरों में जैसे खजुराहो, कोणार्क आदि को देखने से पाठक मालूम कर सकते हैं कि प्राचीन समय में स्त्री की प्रतिष्ठा क्या रही होगी।

मध्य-युग में वेश्या व्यवसाय—

चन्द्रगुप्त मौर्य और अशोक के राज्य काल में वेश्यावृति और व्यभिचार को रोकने के लिये किये गये अनेक प्रयत्नों के उल्लेख हम इतिहास में पाते हैं। चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपनी राजधानी पाटलीपुत्र की वेश्याओं के नियन्त्रण के लिये व्यवस्था की थी। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में इसका उल्लेख किया है। तथा इसका उल्लेख वात्सायन के कामसूत्र में भी मिलता है।

इन दिनों भारत पर अनेक आक्रमण हुए। आक्रमणकारियों द्वारा बलात्कार की शिकार हुई सभी स्त्रियाँ वेश्याएँ बन गई थीं। इस काल में भारत में आये हुए यूनानी यात्री मेगस्थनीज ने लिखा है "वेश्याओं पर नियन्त्रण रखने तथा उनकी बस्ती पर शान्ति बनाये रखने के लिये एक गणिका अध्यक्षा होती थी। यह सब वेश्याओं और वेश्यालयों की सूची रखती थी। सबकी आमदनी, खर्च तथा कर का हिसाब रखती थी तथा सबके स्वास्थ्य तथा जानमाल की भी व्यवस्था करती थी। इसकी

सहायता के लिये अनेक कर्मचारी एवं गुप्तचर रहते थे। मध्ययुग में मुसलमानों के आक्रमणों के कारण अनेक स्त्रियाँ बलात्कार या अपहरण की शिकार हुईं। उन्हें रोटी के लिये मजबूरन वेश्यावृति अपनानी पड़ी। इसके साथ ही जो सैनिक युद्ध में मारे गये उनकी विधवाओं को भी इस पेशे में मजबूरन आना पड़ा। मुसलमानों ने अनेक सुन्दरियों को अपने हरमों में भर लिया। अकबर से लेकर औरंगजेब तक ने अनेक नर्तकियाँ और गायिकायें तथा विदेशी तवायफें रखी थीं। उस समय विजयनगर आदि नगरों में बड़े बड़े अच्छे वेश्यालय थे।

मुगल शासन समाप्त होने के पश्चात शाही और गैरशाही स्त्रियाँ जो पहले तवायफों का कार्य करती थीं, स्वतन्त्र रूप से अपना पेशा करने लगीं। इसके पश्चात् अँग्रेज शासकों ने वेश्यावृति को प्रोत्साहित किया। सन् १८१० में प्रकाशित कप्तान थामस विलियम्सन ने "द ईस्ट इंडिया विंड मे कम" (The East India Wind May Come) नामक पुस्तक में "अनेक अंग्रेजों द्वारा भारतीय स्त्रियों को रखेल के रूप में रखा जाता था" ऐसा उल्लेख किया है। इस समय भारतीय नर्तकियों एवं गायिकाओं के घर पर अंग्रेजों का आना जाना था। लार्ड क्लाइव ने भी कई जातियों की भारतीय रखेल रखी थीं। ब्रिटिश फौजों के डेरे या छावनियाँ जहाँ-जहाँ थीं, वहाँ-वहाँ तथा उनके आस-पास वेश्यालय फलने-फूलने लगे थे।[1]

आधुनिक युग में वेश्यावृत्ति—

औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के कारण वेश्यावृत्ति को बढ़ावा मिला है। वेश्या व्यवसाय एक अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय है। इसमें अनेक युवा एवम् वृद्ध स्त्रियाँ तथा अनेक पुरुष संगठित रूप से कार्य कर रहे हैं। छोटी छोटी कन्याओं को उठाने के अनेक गिरोह हैं जो वेश्यालयों से सम्बन्धित है। इसके साथ ही अनेक प्रतिष्ठित लोग भी वेश्याव्यवसाय में अपना योगदान दे रहे हैं।

नगरीकरण के कारण नगरों में अत्याधिक भीड़-भाड़ उत्पन्न हो गई है। अत्याधिक भीड़-भाड़ के कारण मकानों का अभाव एवं गन्दी बस्तियों का जन्म वेश्यावृत्ति का एक प्रमुख कारण है। इसके साथ निम्नलिखित कारक भी हैं जो वेश्या व्यवसाय को बढ़ावा दे रहे हैं।

१. नगरों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या में कमी—

१९५१ की जनगणना के अनुसार बम्बई में प्रति हजार पुरुषों पर स्त्रियों की संख्या ५९६ थी, कलकत्ते में ६०२ थी, दिल्ली में ७५० थी, कानपुर में ६६६ थी, तथा लखनऊ में ७८३ थी। इन बड़े-बड़े नगरों में स्त्रियों की कमी के कारण वेश्या व्यवसाय को

१. सेंगर, मोहनसिंह : 'सरिता' अगस्त १९५९, पृ० ४९-५६।

बढ़ावा मिला। १९६१ की जनगणना के अनुसार समस्त भारत में प्रति एक हजार पुरुषों पर स्त्रियों की संख्या ९४० ही है। इससे स्पष्ट है कि आज भी भारतीय नगरों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या में कमी है।

२. सस्ते मनोरंजन के स्थान एव चलचित्र—

सस्ते मनोरंजन के स्थान एव चलचित्र ने भी आधुनिक काल में वेश्यावृत्ति को प्रोत्साहित किया है। नगर के जीवन का एवं चलचित्रों का युवतियों पर बुरा असर हो रहा है जिसके कारण वे सच्चे प्रेमी तथा विश्वासघाती प्रेमियों में भेद नहीं समझ पातीं। विश्वासघाती प्रेमी सीधी-साधी लड़कियों को फँसाकर उनका जीवन नष्ट कर देते हैं तथा ये लड़कियाँ बाद में वेश्या व्यवसाय की ओर अग्रसर होती है। **चलचित्र के कारण नियम व नियन्त्रण विहीन जीवन का आदर्श युवक युवतियाँ अपने सामने रखते है जो वेश्यालयों की सीढ़ी का पहला कदम है।**

व्यापार व्यवसाय एव सरकारी नौकरियों के कारण पुरुषों को स्थान-स्थान पर भटकना पड़ता है। वे पारिवारिक जीवन का सुख नही ले पाते तथा वेश्या व्यवसाय को अप्रत्यक्ष रूप से बढ़ावा देते है।

नगरीकरण ने नगरीय जीवन को जन्म दिया है। कला में नगर के प्रत्येक स्थान पर, जाहिरात में मासिक पत्र-पत्रिकाओं, समाचार पत्रों में स्त्री का अंग-प्रत्यंग विशेष रूप से दिखाया जाता है। इसमें आधुनिक कला की दिशा उत्तेजना प्रदान कला ही हो गयी है जिसका असर भारत जैसे देश मे जहाँ अधिकांश लोग अशिक्षित एवं अपरिपक्व हैं अत्यन्त बुरा हो रहा है। वे स्त्री को एक खिलोना समझते हैं। यही कारण है कि भारत के समस्त नगरों में स्त्रियों की प्रतिष्ठा भंग (Eve Teasing) हो रही है।

वेश्या व्यवसाय का पुरुष दृष्टिकोण

इलियट तथा मेरिल ने इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें बताई हैं।

१. अविवाहित व्यक्ति इसलिये ग्राहक बनते हैं, क्योंकि उनके लिये यही सीधा साधा योनि सन्तुष्टि का साधन है।

२. कुछ लोग उत्सुकता के कारण वेश्याओं के ग्राहक बनते है।

३. कुछ लोग कुरूप होते है, स्त्रियों को आकर्षित नहीं कर पाते, इसलिये वेश्याओं के घर जाते हैं।

४. कुछ लोग योनि-अनुभव करने के लिये वेश्याओं को एक साधन समझते है।

५. कुछ विवाहित पुरुष योनि जीवन की नवीनता के अनुभव के लिये वेश्यालयो की ओर अग्रसर होते हैं।

वेश्याओं के प्रकार (Types of Prostitutes)—

राइटमैन ने १९३१ में वेश्याओं के निम्नलिखित प्रकार बतलाये हैं :—

१. "बाल वेश्याएँ"—इसमें १० से १५ वर्ष की कन्याएँ सम्मिलित हैं जो योनि अपराध के कारण बाल अपराधी न्यायालयों के सम्मुख आती हैं।

२. "अपरिपक्व वेश्याएँ"—जो प्राय: अपने घर में रहकर ही कभी-कभी अपने शरीर का विक्रय करती हैं।

३. "सम्भावित या शक्य वेश्याएँ"—जो स्वेच्छापूर्वक योनि सम्बन्ध रखती हैं तथा योनि सम्बन्धों के मुआवजे में धन भी प्राप्त कर सकती हैं।

४. "युवा व्यवसायी वेश्याएँ"—जो नियमित रूप से वेश्या का जीवन व्यापन करती है।

५. "प्रौढ़ व्यवसायी वेश्याएँ"—जो प्रस्थापित वेश्यालयों में निवास करती हैं।

६. "सड़कों पर भटकने वाली वेश्याएँ"—जो ग्राहकों को सस्ते कमरों में या होटलों में ले जाती हैं।

७. "वृद्ध या खराब वेश्याएँ"—जो मद्यपान के कारण विकृत होती हैं फिर भी आवारा एवं परिवार विहीन लोगों से भेंट के लिये दक्ष होती हैं।

८. "विलासिता वेश्याएँ"—जो स्थानीय आलीशान होटलों में तथा सुशोभित कमरों में निवास करती हैं।

९. "रखेल स्त्रियाँ"—जो नियमित रूप से अन्य लोगों के साथ संबंध रखती हैं तथा अपनी आय में वृद्धि रखती हैं।

१०. "छिछोर विवाहित स्त्रियाँ"—जो अपने पति को धोखा देकर अन्य व्यक्ति से प्रणय कर धन प्राप्त करती हैं।

११. "आमंत्रण देने पर आने वाली युवा-वेश्याएँ"—ये प्राय: होटल वाले, पान वाले या रिक्शा वालों के जरिये ग्राहक पटाती हैं—पश्चिमी देशों में टेलीफोन देने पर उपस्थित होती हैं एवं योनि संबंध के बदले में पारश्रमिक पाती हैं।

वेश्या व्यवसाय सबसे पुराना व्यवसाय है। इसको कदापि समाप्त नहीं किया जा सकता लेकिन एक प्रक्रिया के द्वारा धीरे-धीरे इसमें कमी अवश्य होगी। यह व्यवसाय केवल वेश्या, तथा उसके ग्राहकों तक ही सीमित नहीं है। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं (स्त्री एवं पुरुष दोनों) जो इन दोनो को मिलाने का कार्य करते हैं जिन्हें हम दलाल (Pimps) कह सकते हैं। ग्वालियर नगर में किये गये सर्वेक्षण से पता चलता है कि यह व्यवसाय संगठित रूप से किया जाता है। तथा वेश्याओं के कोठे होते हैं, उसमें भागीदार भी होते हैं। ग्वालियर नगर में एक विशेष प्रतिमान देखने को मिलता है। यहाँ की वेश्याएँ अपने आपको विवाहिता बतलाती हैं जिनके परिवार में बच्चे भी हैं तथा इनके पति संगीत में साथ करते है।

वेश्या व्यवसाय की उत्पत्ति मानव की कामवासना में निहित है। हम पुरुष-समूह को ही इसके लिये उत्तरदायी मानते है, जिन्होंने अपनी माताओं एवं बहनों को आज बाजार में बिठा रखा है। नगरों में अन्य व्यवसायों के लोग जैसे तांगेवाले, टैक्सी-ड्रायवर, निम्नस्तर की श्रमिक स्त्रियाँ, वेश्याओं के बाजारों में स्थित पानवाले अप्रत्यक्ष रूप से, दलालों का कार्य कर रहे है। गंदी बस्तियों में स्थित ऐसे कमरे हैं, जिनका उपयोग वेश्याघर के तौर पर किया जाता है। नगरों में सस्ती होटलें जहाँ के मालिक दो चार लड़कियाँ रखकर उनके बल पर ग्राहकों को आकर्षित करते हैं। इसके अतिरिक्त नगर मे ऐसे अनेक स्थान होते हैं, जहाँ पर इस घृणित व्यवसाय के अनेक प्रकरण होते हैं, तथा इसमे नगर के सम्माननीय एवं प्रतिष्ठित नागरिक ग्राहक होते हैं। भारतीय गुप्तचर विभागों ने इसकी खोज की है। इस व्यवसाय के कारण पारिवारिक जीवन छिन्न-भिन्न हो जाता है।

वेश्यावृत्ति के कारण—

वेश्यावृत्ति एक सामाजिक बीमारी है। युवतियों के वेश्या होने के उतने ही कारण हैं जितनी कि वेश्याएँ। वेश्याओं की कहानी नारी जीवन की दर्दभरी कहानी है। पुरुष की योनि सम्बन्धी तृष्णा एवं स्वार्थलोलुपता ही वेश्यावृत्ति की जड़ में है। अनेक स्त्रियों ने योनि संतुष्टि के लिये एवं विलासिता का जीवन व्यापन करने के लिये इस व्यवसाय को अपनाया है। इन प्रकरणों पर हमें समाजशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से सोचना है। जिन लोगों ने वेश्यावृत्ति का अध्ययन किया है, कुछ प्रकरणों में ऐसा देखा है कि वेश्याओं को इस पेशे से निकालकर सज्जन व्यक्तियों के साथ उनके विवाह कर दिये गये लेकिन वे पारिवारिक जीवन

को नही निभा सकीं एव भागकर चलीं गईं। कुछ स्त्रियों के दो या तीन बार विवाह कर दिये गये परन्तु प्रत्येक बार वे भाग गईं। वे क्यों भागीं ? इसका उत्तर यह है कि इन स्त्रियों का योनि अपराधी व्यवहार (Sex delinquent behaviour) था जिसमें परिवर्तन लाना एक कठिन कार्य था। आज वेश्या-प्रतिबंध कानून लागू होने के पश्चात् वेश्याओं के पुनर्वास के समय हमें ऐसे प्रकरणों पर विचार करना है। क्या समाज और सरकार के पास कोई समाधान है ?

वेश्यावृत्ति के निम्नलिखित कारण हैं—

१. दरिद्रता, २. अनाथ बालिका, ३. योनि सम्बन्धी जिज्ञासा, ४. असावधानी प्रवृत्ति, ५. दुखी वैवाहिक जीवन, ६. परित्यक्ता, ७. वैधव्य, ८. बुरी संगत, ९. कष्टमय पारिवारिक जीवन, १०. तलाक, ११. कुँवारेपन में माँ बन जाना, १२. वेश्याओं के परिवार में जन्म, १३. लड़कियों को भगाकर ले जाना, १४. चहार दिवारी का अस्वास्थप्रद पर्यावरण, १५ बाढ़ एवं अग्निकांड, १६. युद्ध, १७. सास एवं ससुर का कठोर व्यवहार, १८. गंदी बस्तियाँ, १९. माता पिता का निम्न चरित्र का होना व मद्यपान करना, २०. विलासिता के जीवन की ओर प्रवृत्त होना, २१. बुद्धिहीनता, २२. मानसिक दुर्बलता, २३. अत्याधिक काम वासना २४. धोकेबाज प्रेमी।

वेश्यावृत्ति सम्बन्धी सामाजिक विधान —

संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में सन् १९५० में सर्वप्रथम मानव अधिकार आयोग ने वेश्या व्यवसाय के विरुद्ध एक विश्वव्यापी आंदोलन छेड़ा था। भारत में ९ मई १९५० को कनवेन्शन (Convention) शुरू हुआ तथा योजना आयोग की ओर से केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड को भारत में वेश्यावृत्ति के सम्बन्ध में सर्वेक्षण करने को कहा गया।

सन् १९५६ में स्त्रियों एवं लड़कियों में अनैतिक व्यापार विरोध कानून (Suppression of Immoral Traffic in Women and Girls) पास हुआ जो १ मई १९५८ से ही लागू कर दिया है। इस कानून के अनुसार वेश्या व्यवसाय हमारे देश में अवैध माना जायगा। तथा कोई भी स्त्री व्यक्तिगत रूप से या वेश्यालयों मे किसी भी व्यक्ति से अवैध लिंग सम्बन्ध नहीं रख सकती। तथा नाबालिग कन्याओं का वेश्यालयों मे पाया जाना अपराध माना जायगा। वेश्यालयों की जांच होती रहेगी। केवल नाच और गाने के लिये मनाई नही है।

नाचने और गाने वाली लड़कियाँ एवं गुप्त वेश्याएँ (Clandestine Prostitution–under the garb of Singing and Dancing.)—

जब से उपरोक्त सामाजिक विधान लागू हुआ है तब से वेश्यावृत्ति के प्रतिमान में परिवर्तन हुआ है। अब ये वेश्याएँ कलाकार बन गई है। ग्वालियर नगर में तो प्रत्येक वेश्या ने अपने घर पर नाम की तख्ती लगाई है तथा 'सिंगर' एवं 'डान्सर' होने का दावा किया है।

अब ये वेश्याएँ आसपास के गांवों में जाने लगी हैं। अब तक भारतवर्ष में वेश्यावृत्ति नगरीय समस्या थी, यद्यपि वेश्याओं के ग्राहक नगरीय एव ग्रामीण दोनों समाज के सदस्य होते हैं। परन्तु अब स्त्रियों एवं लड़कियों का अनैतिक व्यापार सम्बन्धी कानून पास होने के कारण वेश्या व्यवसाय ग्रामीण समाज में फैलने की संभावना है।

नाच और गाने की आड़ में अभी भी वेश्या व्यवसाय चल रहा है। कभी-कभी यह व्यवसाय दोपहर में भी होता है, क्योंकि पुलिस केवल सायंकाल के पश्चात् एवं रात्रि में ही जांच करती है।

अब ये वेश्यायें आम तौर पर माथे में माँग भर कर, सुशील स्त्री के वेष में नगर के प्रत्येक स्थान में घूमती है। बाजारों में, सार्वजनिक बगीचों में तथा सिनेमा में आती जाती हैं तथा वहाँ पर अपने ग्राहक प्राप्त कर लेती हैं। वे ग्राहक को गुप्त स्थानों में अनैतिक कार्य के लिये ले जाती हैं।

आलोचना—

वेश्यावृत्ति एक सामाजिक समस्या है। केवल सामाजिक विधेयक बनाकर इसे कदापि समाप्त नहीं किया जा सकता। यह समाज में एक रूप होगया है। अतः इसे हटाने के लिये अत्यंत सावधानी से एवं मनोवैज्ञानिक ढंग से उपचार करने की आवश्यकता है। गत दो वर्षों में भारतवर्ष में वेश्या व्यवसाय के प्रतिमान में भारी परिवर्तन हुआ है। अध्ययन से मालूम किया जा सकता है कि इसमें कुछ भी कमी नहीं हुई है। परन्तु दिन प्रतिदिन गुप्त वेश्याएँ बढ़ रही हैं।

वेश्यावृत्ति के सम्बन्ध में कानून बनने के पहिले ये वेश्याएँ भारत के प्रत्येक नगरों में एक सीमित एवं निर्धारित क्षेत्र में निवास करती थीं। लेकिन कानून लागू होने के पश्चात् अब ये नगरों के प्रत्येक स्थान पर स्वच्छंद रूप से भटकती है। अंत में हमें यह ध्यान में रखना चाहिये कि जब तक वेश्याओं के पुनर्वास के संबंध में

हमारे पास कोई ठोस कार्यक्रम नहीं होगा तब तक वेश्यावृत्ति कदापि समाप्त नहीं हो सकती।

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि हमे भारतीय समाज के ढाँचे में परिवर्तन करना होगा। वेश्या व्यवसाय केवल सरकार अथवा किसी सेवाभावी संस्था के प्रयत्नों से दूर नहीं किया जा सकता। इसमें हमें समाज के प्रत्येक नागरिक के सहयोग की आवश्यकता है। इतने पर शायद हम इस व्यवसाय को समाप्त कर देंगे, पर क्या हम समाज के प्रतिष्ठित एवं सम्माननीय स्त्री-पुरुषों के अवैध लिंग संबंधों को कभी समाप्त कर सकेंगे ? लेखक के मत से यह भी वेश्या व्यवसाय है।

वेश्या प्रतिबंधक विधेयक कानून में भी अनेक त्रुटियाँ है।

वेश्यावृत्ति को दूर करने के उपाय—

१. हमारे समाज में युवक युवतियों का दृष्टिकोण संकोच के कारण एक गुप्त रहस्यमय बना रहता है। वे जैवकीय तथ्यों (Biological facts) को भी नहीं जानते। अतः परिवार में तथा विद्यालयों में योनि शिक्षा अनिवार्य होना चाहिये।

२. युवक युवतियों को नैतिक शिक्षा के मूल्यों से परिचित करना चाहिए।

३. पारिवारिक नियंत्रण जरा भी कम न होने पावे तथा एक ऐसा वातावरण बने जिससे सीधी-साधी लड़कियाँ विश्वासघाती प्रेमियों के चंगुल में न फसें।

४. नारी के प्रति समाज के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना आवश्यक है।

५. युवक युवतियों को अपना जीवन साथी चुनने के लिये समुचित अवसर प्रदान किया जाना चाहिये। बेमेल विवाह तुरन्त रोक दिये जाँय।

६. मनोरंजन के साधनों की समुचित व्यवस्था की जाय ताकि पुरुष और स्त्रियाँ दोनों ही यह अनुभव करें कि यौवन जीवन के अलावा भी जीवन में बहुत कुछ है।

७. भारतीय समाजशास्त्री जहाँ तक हो सके भारतीय लोगों के योनि-व्यवहार (Sexual Behaviour) का अध्ययन करें।

८. किसी भी स्त्री को सास, भावज, ननद आदि के तानों और ज्यादतियों से घर छोड़ने की बात कभी न सोचना पड़े। परिवार के सदस्य इस बात की ओर ध्यान दें।

९. समाज के हर व्यक्ति को काम मिले चाहे वह पुरुष हो या स्त्री। प्रत्येक नागरिक के दिल में राष्ट्रीयता तथा स्त्रियों के प्रति आदर हमेशा बना रहे।

१०. जीवन में एक बार भूल की शिकार हुई युवती को परिवार तथा समाज के द्वारा अपनाया जावे तथा कोई ऐसा कदम न उठाया जाय जिससे वेश्या व्यवसाय को बढ़ावा मिले।

११. अनाथ एवं अवैध बच्चों का संरक्षण किया जाय ताकि उन्हें वेश्या बनने से रोका जाय।

१२. श्रमिकों की स्थिति में आवश्यक सुधार किये जाँय। तत्कालीन वेश्याओं में से जो युवा हो उनके विवाह कर दिये जाँय जिसके लिये राष्ट्र प्रेमी नवयुवकों को विवाह के लिये प्रेरित किया जाय।

१३. जो वेश्यायें गुप्त रोगों से पीड़ित है उनके लिये एक पृथक आश्रम खोला जाय तथा उनका बंध्यकरण किया जाय।

१४. आयु समूह के आधार पर तथा व्यक्तिगत रुचि के आधार पर इन वेश्याओं के पृथक-पृथक आश्रम हों जहाँ उन्हें भिन्न-भिन्न लघु उद्योगों का प्रशिक्षण दिया जाकर आत्म निर्भर बनाया जाय।

१५. जो स्त्रियाँ योनि अपराधी प्रवृत्ति की दिखाई पड़े उन्हें भी अलग रखकर उनका सावधानी से उपचार किया जाना चाहिये।

१६. फैक्ट्रियों, दफ्तरों, कारखानों तथा विभिन्न उद्योगों में इन स्त्रियों को नौकरी में प्राथमिकता दी जानी चाहिये।

१७. राज्यस्तर पर एक विभाग खोला जावे, जो समय-समय पर इनके पुनर्वास के सम्बन्ध में आयोजना तैयार करे।

१८. प्रत्येक नगर में शासकीय एवं गैरशासकीय सदस्यों की एक कमेटी बनाई जावे जो नगर में सर्वेक्षण किया करे।

१९. सामाजिक शिक्षा के माध्यम से तथा आध्यात्मिक तरीकों द्वारा इन स्त्रियों को शिक्षित किया जावे।

२०. विश्वविद्यालय की ओर से इस विषय पर अनुसंधान करने के लिये विद्यार्थियों को प्रोत्साहित किया जावे।

इसके साथ-साथ देश के प्रत्येक नागरिक को चाहिये कि वह राष्ट्र के प्रति स्वय का उत्तरदायित्व समझ कर तथा भारतीय नैतिकता एव अनुपम संस्कृति को ध्यान में रखते हुए इस समस्या का पूर्ण अंत करने में योगदान दे।

प्रकरण का सारांश

१—वेश्या व्यवसाय की धारणा—६ ।

२—प्राचीन भारत में वेश्यावृत्ति के रूप—देवदासी प्रथा ।

३—मध्ययुग में वेश्यावृत्ति ।

४—आधुनिक युग में वेश्यावृत्ति ।

५—वेश्यावृत्ति का पुरुष दृष्टिकोण—५ ।

६—वेश्याओं के प्रकार ।

(१) बाल वेश्यायें ।

(२) सम्भावित या शक्य वेश्यायें ।

(३) अपरिपक्व वेश्यायें ।

(४) युवा व्यवसायी वेश्यायें ।

(५) प्रौढ़ व्यवसायी वेश्यायें ।

(६) कार्यकर्त्ता तथा सड़कों पर भटकने वाली वेश्यायें ।

(७) वृद्ध या खराब वेश्यायें ।

(८) विलासिता वेश्यायें ।

(९) रखेल वेश्यायें ।

(१०) छिछोर विवाहित स्त्रियाँ ।

(११) आमंत्रण देने पर आने वाली लड़कियाँ ।

७—वेश्यावृत्ति के कारण ।

८—वेश्यावृत्ति सम्बन्धी सामाजिक विधान ।

९—आलोचना ।

१०—वेश्यावृत्ति को दूर करने के उपाय—२० ।

अध्याय ६

भिक्षावृत्ति की समस्या

Beggars' Problem

भिक्षावृत्ति का अर्थ—जब बिना किसी मेहनत किए धन या सामग्री दूसरों से बिना लौटाने की शर्त पर अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए जाय और उसके बदले में किसी भी प्रकार का काम न किया जाय तो वह भिक्षा है।

भिखारी की परिभाषा—

बम्बई भिक्षा कानून १९४५ के अनुसार जीविकोपार्जन के साधन के बिना, सार्वजनिक स्थानों पर आत्म प्रदर्शन कर मांगने वाला कोई भी व्यक्ति भिखारी है।[1]

१९४४ के मैसूर भिक्षा निरोध बिल के अनुसार भिखारी सार्वजनिक स्थान में मांगकर जीविकोपार्जन करने वाला व्यक्ति है। भिखारी को दान में कुछ भी वस्तु दी जा सकती है, चाहे वह धन हो, अन्न (कच्चा अथवा पका हुआ) हो, कपड़े हों अथवा अन्य कोई भी वस्तु हो। भिक्षावृत्ति में द्वार पर मांगना, हाथ पसार कर मांगना, जख्मों अथवा चोटों को दिखाकर अथवा जान बूझकर कृत्रिम चोटों के निशान बनाकर, दया की भावना को उकसा कर मांगना आदि सभी सम्मिलित हैं। सार्वजनिक स्थान पर धर्म के नाम पर मांगने वाला व्यक्ति भी भिखारी है।[2]

इस प्रकार भिन्न-भिन्न राज्यों में 'भिखारी' की परिभाषा भिन्न-भिन्न प्रकार से है।

लेखक ने स्वयं सन् १९५८ में (जब म० प्र० का पंचायत एवं समाज कल्याण विभाग द्वारा इन्दौर में भिक्षावृत्ति का अध्ययन किया जा रहा था) एक अन्वेषक के रूप में कार्य किया था। उस अध्ययन में 'शनि महाराज' को भिक्षुक नहीं माना गया था।

---

1. Bombay Beggars' Act (1945), cited by C.M. Abraham 'Urban Sociology' P. 150.
2. *Ibid*, P. 149.

सार्वजनिक स्थान पर धर्म के नाम पर मांगने वाला व्यक्ति भिखारी हो सकता है पर धर्म के ठेकेदार पुजारी या शादी विवाह कराने वाले पुरोहित भिखारी नहीं हैं। इसलिये हमने सही परिभाषा सर्व प्रथम दी है। सारांश में भिखारी वह व्यक्ति है, जो बिना किसी परिश्रम के धन या अन्न, वस्त्र आदि प्राप्त करता हो, तथा जिसने इस वृत्ति को पेशा बना लिया हो।

भिक्षावृत्ति का जन्म—

मानव अपने प्रारंभ के जीवन मे शिकारी था। जिस मनुष्य को शिकार बड़ा मिल जाता था, वह अन्य व्यक्तियों को उनका हिस्सा बाँट देना था। बहुत से व्यक्ति प्रतिदिन बिना प्रयास के भोजन करते थे। इस प्रवृत्ति से कई तो इसी तलाश में रहने लगे कि कब दूसरों को बड़ा शिकार मिले और हमें खाने को मिले। इस प्रवृत्ति में वृद्धि होती गई। आश्रम व्यवस्था में गुरुकुलों के ब्रह्मचारी गृहों से भिक्षा लेने जाते थे। यजमान के पास जाकर "ओऽम भवति भिक्षान् देही" यह कहते थे। इस समय भिक्षुकों का आदर किया जाता था। वानप्रस्थाश्रम में तो स्त्री पुरुषों का जीवन मांगने खाने पर ही निर्भर हो गया। इसी प्रकार से यह अति प्राचीन काल से चली आई परिपाटी आज हमारे सामने नया रूप लेकर एक समस्या के रूप में खड़ी है।

कई लोग काम से जी चुराने लगे और अपना निर्वाह मांग कर करने पर उतारू हो गये। कुछ अयोग्यता के कारण अपनी उपजीविका के हेतु अन्य व्यक्तियों से सहायता व दान लेने लगे। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार से भिक्षावृत्ति में वृद्धि होती गई। भिक्षावृत्ति के जन्म एवं विकास में समय-समय पर पड़ने वाले अकाल, युद्ध, महामारी ने बहुत सहायता की। द्वितीय युद्ध के पश्चात् तो यह समस्या और भी बढ़ गई। आज यह समस्या सारभौम समस्या है। भारत की बढ़ती हुई बेकारी ने भी इसके विकास में योगदान दिया।

भारत में तो भिक्षावृत्ति की समस्या कोढ़ की बीमारी के समान भयंकर रूप धारण किए हुए है। इसे सबसे अच्छा व्यवसाय मानते है। कहावत भी प्रचलित है "कुछ नहीं तो भीख मांगकर खा लेंगे"। भारत में अनेक प्रकार के भिक्षु पाये जाते है तथा अनेक लोगों ने संगठित रूप से इसे पेशा बना रखा है। वैसे यह समस्या कुछ देशों को छोड़कर विश्वव्यापी है।

भिक्षावृत्ति के कारण

१. निर्धनता।

२. गाँव में कृषि के व्यवसाय में क्षति।

३. बड़ी मात्रा मे शहरों में आवास और वेकारी।
४. आर्थिक दशा छिन्न-भिन्न होना।
५. प्राकृतिक प्रकोप।
६. घरेलू संकट एवं बाधा।
७. निराशा एवं असहायता।
८. समाज द्वारा बहिस्कृत।
९. धर्म का प्रभाव।
१०. कर्म और भाग्य के सहारे।
११. पारिवारिक पेशा।
१२. भयंकर रोग से पीड़ित होना।
१३. पागलपन।
१४. शारीरिक विकृति।
१५. बलात् भिखारी।

भिक्षुकों के प्रकार

१. हृस्ट पुष्ट भिक्षुक।
२. अंगभंग भिक्षुक।
३. बीमारी ग्रसित भिक्षुक।
४. घुमक्कड़ भिक्षुक।
५. पेशेवर भिक्षुक।
६. धर्म के नाम पर बनावटी भिक्षुक।
७. अनाथ (बिना संस्थागत) भिक्षुक।
८. अनाथ (संस्थागत) भिक्षुक।
९. क्षतविक्षित मस्तिष्क भिक्षुक।
१०. निर्धन, बेकार भिक्षुक।
११. गाना सुनाने वाले भिक्षुक।
१२. बाल भिक्षुक।
१३. शिक्षित भिक्षुक (श्वेतवस्त्रधारी)।[1]

---

1. यह व्यक्ति प्राय: अच्छे वेश में होते है, और बड़े-बड़े परिवारों में जाकर कुछ असत्य बातें बनाकर पैसे मांगते हैं तथा कहते हैं कि घर पहुँचते ही मनीआर्डर मे रुपया वापस कर देंगे।

१४. सामाजिक विघटन से बने भिक्षुक ।
१५. सन्यासी एवं ब्रह्मचारी के भेष में ढोंगी, आलसी भिक्षुक ।

भिक्षुकों का आर्थिक जीवन—

प्राय: भिक्षुकों को नकद तथा वस्तुगत दोनों प्रकार की भिक्षा मिलती है । उनकी आर्थिक दशा हम देखते हैं तो पता चलता है कि कई भिक्षुक लखपती हो गये है । जहाँ पर परिवार के समस्त सदस्य इस पेशे को करते हैं वहाँ आय अत्याधिक होती है । कुछ जातियों का यही पेशा है, जैसे बाबा, नाथ, फकीर, पंडे, पुजारी आदि ।

भिक्षुको की सामाजिक स्थिति—

भिक्षावृत्ति एक सामाजिक समस्या है । कई लोग तो ब्राह्मण, फकीर, बाबा को इसलिए भिक्षा देते है कि उनके देने से दी हुई वस्तु व रकम का भिक्षा सम्पन्न होकर दान में शामिल है । जो उनके भविष्य में कर्म की पुष्टि करेगा । इस कारण इनका समाज में आदर होता है । जो व्यक्ति बहिष्कृत नियमों के कारण भिक्षुक बने हैं वे तो घृणा की दृष्टि से देखे जाते है । भिक्षुकों के भी परिवार होते हैं, इनकी बस्तियाँ होती है । इनके नियम, रीति-रिवाज, निषेध, व्यवहार भिन्न होते हैं ।

भिक्षुकों की आदतें एवं दोष—

प्राय: बीमारी से ग्रसित व अशिक्षित होने के कारण भिक्षु गंदे रहते हैं । इनकी आदतें भी बिगड़ जाती है, नैतिक पतन होता है । कई भिखारी गांजा, भांग, शराब आदि पीते हैं । जुआ भी खेलते हैं । इससे उनकी मानसिक एवं शारीरिक दशा पर प्रभाव पड़ता है । वे अपराध तथा हत्या करने को भी प्रवृत्त हो जाते हैं । इनके निवास स्थान बस स्टैंड, पुल के नीचे, रेलवे स्टेशन के मैदान, सड़कों के किनारे, या शहर से दूर होते हैं । यह निवास स्थान प्राय: गंदे एवं अस्वास्थ्यकर होते हैं ।

भिक्षावृत्ति को समाप्त करने के उपाय—

भिक्षावृत्ति निरोध के सबंध में बम्बई, बंगाल, बिहार, मद्रास, भोपाल, तथा दहली में कानून पारित हो चुके हैं । अन्य राज्यों में भी कानून बन रहे हैं । लेकिन केवल सामाजिक विधान के द्वारा इसे कदापि समाप्त नहीं किया जा सकता, इसमें प्रत्येक नागरिक को योगदान देना होगा । यदि दाता नही होंगे तो यह समस्या हल हो सकेगी । राज्य एवं समाज कल्याण विभाग द्वारा, बड़े-बड़े नगरों में जहाँ कानून लागू किया गया है, इनके लिये "भिक्षुगृह" खोले जा रहे हैं, जिसमे स्त्रियों एवं पुरुषों

के, तथा हट्टे-कट्टे और दुर्बल तथा बीमारों के लिये अलग-अलग सदन होंगे। इन सदनों में अन्न, वस्त्र, सामाजिक शिक्षा तथा उद्योग-धंधो की व्यवस्था होगी।

भारत सरकार को चाहिये कि जब कानून बनाकर भीख मांगना अपराध है तो भिक्षुकों को तथा उन पर निर्भर व्यक्तियों को रोजगार दिलाये ।

प्रकरण का सारांश

१. भिखारी की परिभाषा।
२. भिक्षावृत्ति का जन्म।
३. भिक्षावृत्ति के कारण १५।
४. भिक्षुको के प्रकार १५।
५. भिक्षुकों का आर्थिक जीवन।
६. भिक्षुको की सामाजिक स्थिति।
७. भिक्षुको की आदतें एवं दोष।
८. भिक्षावृत्ति को समाप्त करने के उपाय।

अध्याय १०

गंदी बस्तियाँ

Slums

उद्योगीकरण के कारण बड़े-बड़े नगरों का निर्माण हो गया है। इन नगरों की जनसंख्या बहुत बढ़ गई है। कानपुर, कलकत्ता, बंबई, ग्रहमदाबाद, इन्दौर जैसे नगरों में लाखों व्यक्ति रहते हैं। इन व्यक्तियों के निवास का उचित प्रबंध नहीं है। निम्न तथा मध्यम वर्ग के व्यक्ति विशेषत: मजदूर गंदी बस्तियों में रहते हैं। वहाँ रहने से उनका स्वास्थ नष्ट हो जाता है तथा श्रमिकों की कार्यक्षमता कम हो जाती है। वे दरिद्रता की ग्रोर बढ़ते हैं। गंदी बस्तियों के कारण मद्यपान, ग्रनैतिकता, ग्रपराध, वेश्या व्यवसाय, बाल ग्रपराध ग्रादि को प्रोत्साहन मिलता है। भारत की राजधानी नई दिल्ली की गंदी बस्तियाँ भी ग्रभी तक दूर नहीं हो सकी हैं।

गंदी ग्रौर घनी बस्ती निर्माण के कारण—

प्रारंभ मे जब से नगर बसे थे बस्तियाँ नगर के बाहर थीं, किन्तु ग्रब जन-संख्या की वृद्धि के कारण नगर में बने मकानों के कारण मध्य में ग्रागई ग्रौर ग्रपना स्वरूप बनाये रहीं। दूसरे समुदाय के सामने ग्रपने को शर्मिन्दा होने के धब्बे से बचाने के लिये भी गंदी बस्तियों में निवास करना पड़ा। चार्ल्स डिकन्स ने बताया कि जो त्योहारों पर पर्याप्त खर्च न कर सकता है तथा त्योहारानुकूल पोशाक पहिनने की स्थिति में नहीं होता उसे निम्न बस्ती में रहना पड़ता है। ग्राधुनिक समय में प्रशासक, मंत्रीगण, समाज-सुधारक, ग्रध्यापकगण, ग्रौर विद्यार्थीगण इन सभी का ध्यान गंदी बस्तियों की ग्रोर ग्राकर्षित हुग्रा है तथा वे इन बस्तियों को हटाने के संबंध में ग्रपनी रूप रेखा तैयार कर रहे हैं।

कई लोग तो गंदी बस्तियों के सम्बन्ध में ग्रालोचना करते हुए बताते हैं कि गंदी बस्ती में रहना ईश्वर की दी हुई सजा है। यह व्यक्तिगत उत्तरदायित्व की

अवहेलना करने की उन लोगों की सजा है। गंदी बस्तियों के ये निवासी वे लोग होते हैं जो बाहर से आते हैं, जिनकी आर्थिक दशा गिरी हुई होती है। कभी-कभी मकानों की कमी के कारण मध्यवर्ग के लोगों को भी गंदी बस्तियों की शरण लेना पड़ती है।

गंदी बस्तियों में आवास एक संकटाकालीन दशा को बताना है। यहाँ पर सस्ता निवास व्यक्ति या कुटुम्ब को मिल जाता है। जब तक अन्य सुविधा की जगह नहीं मिलती है, तब तक स्थान रहने को मिलता है। इन बस्तियों में आकर मनुष्य अपनी स्थिति को निम्न पाता है। कई लोग गंदी बस्तियों में रहना ही अधिक पसंद करते हैं। गंदी बस्तियों में आवास का किराया अत्यंत कम होता है। जो व्यक्ति अविवाहित है, या जो विवाहित होकर परिवार से दूर हैं, ऐसे लोगों का यहाँ अधिक निवास होता है। कई लोग अपने निम्न स्तर को उन्नत समाज में रहकर नहीं बढ़ा पाते, अतः वे ऐसी गंदी बस्तियों में अपनी सामाजिक दशा सुधारने के लिये भी रहने आ जाते हैं। कई लोग इसलिये भी रहते हैं कि वहाँ उनकी पहिले ही जायदाद होती है।

एक विद्वान समाज-शास्त्री ने कहा है कि एक नगर के समाज का जिसकी कि दशा निम्न श्रेणी की है, जितनी प्रस्थिति नीचे दर्जे की होगी उतने ही अधिक वे सदस्य अपने निवास स्थान एक ऐसी सीमा में ले जाने के आदी हो जाते हैं जो जगह अत्याधिक घनी बस्ती की होती है। गंदी बस्तियों का वातावरण भिन्नता का वातावरण होता है। गदी बस्तियाँ केवल शहर में आने वाले नवीन लोगों के लिये ही नहीं होतीं बल्कि गंदी बस्तियों में निम्न स्तर के लोगों का निवास अधिक मात्रा में पाया जाता है।

गदी बस्तियों में रहने वाले निवासियों की पृष्ठ भूमि की यदि खोज की जाय तो पता चलता है कि यह निवासी नगर के अन्य भागों से आये हुए हैं किन्तु उनके सम्बन्ध में बहुत ही कम तथ्य सुचारु रूप से एकत्रित किये गये हैं।

गन्दी बस्तियों की ओर जाने वाले—

१. जिनका सामाजिक पतन हो गया है।
२. जिनकी आर्थिक दशा अस्त-व्यस्त हो।
३. निम्नस्तर के लोग तथा श्रमिक।
४. दिवालिया, बीमारी से तथा बेकारी से पीड़ित व्यक्ति।
५. मद्यपान करने वाले, जुआ खेलने वाले।

६. सीमित व्यवसायिक आय में कमी होने से ।
७. अनियमित योनि-सम्बन्धी जीवन, परित्याग या विवाह-विच्छेद के कारण पीड़ित व्यक्ति ।

गन्दी बस्तियाँ और सामाजिक विघटन—

परिस्थितियाँ सामाजिक विघटन को देखते हुए निर्धारित की जा सकती हैं। परिवर्तित व्यवहार सामान्य रूप से मूल व्यवहार नहीं होता। व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन नगर के वातावरण से होता है। व्यक्तिगत विघटन के कारण ही सामाजिक विघटन हो जाता है।

गन्दी बस्तियाँ सामाजिक विघटन को बढ़ावा देती हैं। गन्दी बस्तियाँ व्यक्तिगत कार्यों का अत्यधिक मात्रा में असफल होने का परिणाम हैं। आधुनिक गन्दी बस्तियाँ नागरिकों के जीवन पर गहरा प्रभाव डालती हैं, जो कल्याणकारी राज्य के लिये घातक है।

नगरीकरण तथा गन्दी बस्तियाँ—

औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के कारण ग्रामीण लोग नगर की ओर तीव्र गति से आकर्षित हो रहे हैं। नये-नये उद्योग नगरों में खुल रहे हैं। अत्याधिक भीड़-भाड़ के कारण आवास की कमी है। नगर में विभिन्नता का पर्यावरण देखने को मिलता है। नगरों में एक ओर तो बड़े-बड़े प्रासाद होते हैं तथा दूसरी ओर गन्दी बस्तियाँ जहाँ पर ऐसी परिस्थिति होती है कि व्यक्ति पशु के समान जीवन व्यापन करता है। उसकी हालत हमेशा चिन्ताजनक होती है। ये गन्दी बस्तियाँ सुख और स्वास्थ्य के लिये अहितकर होती हैं। सर्व प्रथम नगरों में एक व्यक्ति को आश्रय मिलता है। उसके पश्चात् नगरों का जीवन इस प्रकार का होता है कि जहाँ पर ये व्यक्ति अनैतिकता को फैलाते हैं। नगरों में जीवन तथा मूल्य धन से नापा जाता है। हमें यहां पर निवास का एक ऐसा प्रतिमान देखने को मिलता है जहाँ पर सस्ती होटलें, निम्न कोटि के रेस्तराँ, तथा गये बीते स्थान होते है। नगर के पर्यावरण में व्यक्ति खो जाता है। व्यक्ति अनैतिकता की ओर बढ़कर पतन की ओर जाता है। युद्ध के कारण या बाहर से आनेवाले शरणार्थियों के कारण नगरों में एक ऐसे वर्ग की बहुलता होती हैं जिनका सामाजिक जीवन गिरा हुआ होता है। जन-संख्या में वृद्धि हो जाने से पुराने मकानों में रहने की नौबत आ जाती है। जिस प्रकार से नगरीय समाज में वृद्धि हो रही है, उस अनुपात म मकानों में वृद्धि नहीं होती है। मनुष्य का जीवन बेकारी, दरिद्रता,

एवं आर्थिक दशा गिर जाने से चारों तरफ से घोर चक्र सा घिरा हुआ रहता है।

भारत मे गंदी बस्तियाँ (Slums in India)—

धारणा—एक पुराने, छिन्न-भिन्न या गिरे हुए मकान को गदी बस्ती नहीं कहा जाता है। गंदी बस्ती एक क्षेत्र होता है। भारतवर्ष अत्यंत गरीब तथा अविकसित देश है। आज भारत के सामने गंदी बस्तियों की समस्या ने एक जटिल रूप धारण कर रखा है। गत ३-४ वर्षों से इन बस्तियों में रहने वाले श्रमिक लोग औद्योगिक गृहनिर्माण योजना के द्वारा बस गये हैं। फिर भी जैसे-जैसे भारतीय नगरों का रूप विशाल हो रहा है, ये बस्तियां तथा हमारी सामाजिक समस्याएँ जो इन बस्तियों से संबधित है दिन प्रतिदिन बढ़ती जारही है। योजना आयोग ने इसे समाप्त करने के लिये दो मार्ग बतलाये हैं।

१. कानून पारित किया जाना तथा तीव्र जनमत तैयार करना।

२. एक कमेटी का निर्माण किया जाना जैसा कि नई दिल्ली में हुआ है। उसके द्वारा मास्टर प्लान तैयार करना।

जिस प्रकार हम भविष्य के लिए गंदी बस्तियों का निर्माण एवं विकास न होने देने का प्रयत्न करते हैं, उसके साथ ही साथ हमें वर्तमान गंदी बस्तियों की समस्या को हल करना होगा। द्वितीय पंचवार्षिक योजना में गंदी बस्ती सफाई के लिये २० करोड़ रुपये की व्यवस्था थी। अनुमान है कि तृतीय पंचवार्षिक योजना में यह रकम दुगनी की जायगी।

गंदी बस्तियों के निवारण के लिये प्रत्येक राज्य में सामाजिक तथा राजनैतिक सर्वेक्षण होना चाहिए। एक निश्चित कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार करना अत्यावश्यक है। वर्तमान में गंदी बस्तियो में जो लोग निवास करते हैं, उन्हें वहाँ से हटाने के बजाय पास के स्थानों में बसाना चाहिए। मकानों का किराया, उनकी आमदनी को दृष्टिकोण में रखकर अत्याधिक नहीं होना चाहिये।

भारतवर्ष ग्रामों का देश है। ग्रामो की दशा शोचनीय है। अधिकतर मकान कच्चे बने है। गांवों में ८५% मकान कच्चे मिट्टी के बने हुए हैं। ९५ प्रतिशत मकानों मे पखाने नहीं होते। एक विज्ञप्ति, जो सर्वेक्षण पर आधारित थी, में बताया गया है कि ३२ प्रतिशत मकानों में एक कमरा तथा ३१ प्रतिशत मे दो कमरे मिलते है। वैसे ही कलकत्ता, मद्रास, दिल्ली में २५ प्रतिशत कच्चे मकान हैं। वहाँ की जनसंख्या में ५ प्र० श० वृद्धि हुई है जब कि मकानों में केवल २ प्रतिशत वृद्धि हुई है। जन-

संख्या के अनुपात से मकानों में वृद्धि नहीं हो रही है। इसलिये मकानों की कमी है। अधिकतर मकान अस्वास्थ्यप्रद तथा पुराने ढंग के बने हुए है जिनमें हवा और रोशनी नहीं आती। नगरों में अनेक व्यक्ति फुटपाथ पर सोते हैं। बहुत से होटलों या पार्क में सोते हैं। बड़े-बड़े नगरों में २०-२० व्यक्ति एक कमरे में निवास करते हैं जिससे बालकों पर बुरा असर होता है। इस संबंध में डॉ० राधाकमल मुकर्जी ने कहा कि "भारतीय औद्योगिक केन्द्रों की इन असंख्य गंदी बस्तियों में मनुष्यता का निर्दयता के साथ गला घोंटा जाता है, नारीत्व का अपमान होता है, और बालकत्व को प्रारंभ से ही विषपान कराया जाता है।"

प्रमुख भारतीय नगरों की गंदी बस्तियाँ—

१. **बंबई की चालें** (Chawls of Bombay)—

बंबई में औद्योगिक मजदूरों की अधिक संख्या है तथा मध्यवर्ग के लोग चालों में रहते हैं। इन चालों में घनी वस्ती होती हैं। कबूतरों के खानों के समान कमरे बने होते हैं, जिनमें लोग रहते हैं। मकानों में धूप हवा की कोई सुविधा नहीं है। अधिकतर मकान तो जमीन की सतह से एक फीट से कम ऊँचाई पर हैं। एक कमरे में ही एक परिवार रहता है। यत्र-तत्र गंदापन दिखाई पड़ता है। पानी की कमी के कारण हमेशा झगड़े का वातावरण बना रहता है।

२. **कलकत्ता की बस्तियाँ** (Busties of Calcutta) —

यह बस्तियाँ कलकत्ता में जमीदारों तथा मिल के सरदारों ने सस्ते, कच्चे, अस्वास्थप्रद मजदूरों के निवास के लिए बनाई हैं। यह बस्तियाँ मानव जीवन के लिये अयोग्य हैं। इनमें पाखाने तथा स्नानघर नहीं हैं। चारों ओर कूड़ा करकट पड़ा रहता है। कलकत्ते में एक ओर तो पूँजीपतियों की, मिल मालिकों की विशाल अट्टालिकाये और दूसरी ओर मजदूरों की यह बस्तियाँ। ये बस्तियाँ 'समाजवादी आदर्श' और प्रजातत्रीय सिद्धान्तों के खोखलेपन पर अट्टहास करती हैं। इन बस्तियों में रहने वालों का जीवन अत्यंत खराब एव अस्वास्थप्रद होता है।

३. **कानपुर के अहाते** (Ahatas of Kanpur)—

कानपुर मे गंदी बस्तियों को अहाते कहते हैं। फरवरी सन् १६५२ को पंडित नेहरू कानपुर के श्रमिकों की बस्तियाँ देखने गये थे। इन बस्तियों को देखने के पश्चात् प्रधान मंत्री ने कहा "इन बस्तियों को जला देना ही उचित है।" कानपुर श्रम जाँच समिति ने कहा है "रात्रि के समय इन बस्तियों में किसी भी अनजान व्यक्ति का आना खतरे से खाली नहीं है। घुटने में मोच तो अवश्य आ जायगी, ठोकर खाकर किसी गड्ढे या कुएँ में गिर जाना भी संभव है। अहातों के आसपास असंख्य रोगों के कीटाणु रहते है। वातावरण अत्यंत अस्वास्थप्रद एवं पतनकारी है।"

४. **मद्रास की चेरी** (Cherries of Madras)—

दक्षिण भारत के मद्रास, मदुरा, कोयम्बटूर, कोचीन जैसे नगरों में कलकत्ता की बस्तियों से भी खराब दशा है। इन बस्तियों में मकानों का औसत नाप ८'×६' है जो कच्चे बने हुए होते हैं। बारिश के दिनों में यहाँ के निवासियों की अत्यंत दयनीय दशा हो जाती है।

५. **इन्दौर की श्रमिक बस्तियाँ** (Labour Huts of Indore)—

इन्दौर, मध्य प्रदेश का सबसे बड़ा औद्योगिक नगर है। यहाँ पर करीब १ लाख श्रमिक सूती वस्त्र तथा अन्य कारखानों एवं उद्योगों में कार्य करते हैं। इनकी बस्तियाँ इन्दौर में कुलकर्णी भट्टा, पंचम की फेल, गोमा की फेल, बड़ी ग्वालटोली, भिण्डीखो, परदेशी पुरा आदि स्थानों पर हैं। नगर के धनी व्यक्तियों ने चाल बनाये हैं जिनमें भी श्रमिक रहते हैं। अधिकतर मकान कच्चे बने हैं। यदि इन्हें झोपड़ियों का झुण्ड कहा जाये तो अतिशयोक्ति न होगी। इन बस्तियों में, एक ५'×५' की झोपड़ी मे १२—१५ व्यक्ति निवास करते हैं। इनमें हवा, पानी, तथा रोशनी का उचित प्रबध नहीं है। बारिश में इन गरीबों की दशा दयनीय होती है। झोपड़ी के एकमात्र दरवाजे पर पड़ा टाट का गदा पर्दा इन बस्तियों की करुण तथा दर्दभरी कहानी का जीना-जागता विज्ञापन है। जो लोग इन बस्तियों में रहते हैं, मद्यपान एवं अनैनिकता की ओर अग्रसर हैं।

इन्दौर के श्रमिकों मे से कुछ लोग औद्योगिक आवास योजना के अन्तर्गत इंटक के प्रयत्नों से 'नदानगर' में बस गये हैं। फिर भी अधिकांश लोग अभी भी अस्वास्थप्रद झोपड़ियों में ही निवास करते हैं। 'नंदानगर' में श्रमिक कल्याण के वे समस्त साधन उपलब्ध हैं फिर भी आवास एक बड़े परिवार के लिये अपर्याप्त एवं असुविधाजनक ही है।

ग्वालियर की गलियां (Gullies of Gwalior)—

नगर आयोजना न होने के कारण तथा नगर निगम का नियंत्रण जनता पर न होने के कारण लोगों ने मनमाने मकान बनाकर गलियों का निर्माण कर दिया है। लश्कर में अनेक छोटी-छोटी गलियाँ है, जहाँ पर घनी और गंदी बस्तियाँ है। इन गलियों में निवास करने वालों का जीवन निश्चित रूप से अस्वास्थप्रद है। अनेक मकानों में रोशनी, हवा, सूर्यप्रकाश आदि का अभाव है। इनमें मानव का जीवन नरकीय जीवन सा ही है जहाँ स्वास्थ की दृष्टि से जो सुविधायें होनी चाहिए वे देखने को नहीं मिलती है। 'लश्कर की एक घनी बस्ती में जब मैं एक अध्यापक के निजी मकान में गया था तो मुझे पहिले एक ४' फुट की चौड़ी गली में एक फर्लांग जाना पड़ा,

फिर वह गली ५' चौड़ी होगई तथा २ फर्लांग जाने के बाद तीन बार एक-एक फुट की गलियों में मुड़ना पड़ा और फिर ४।। फुट की गली में आधा फर्लांग जाने पर मैं उस स्थान पर पहुँचा जहाँ मुझे जाना था।" अधिकतर मकान जमीन के सतह से लगे हुए है और उनमें हमेशा सीलन रहती है

गंदी बस्तियों के निवारण के उपाय—

भारत में घनी एवं गंदी बस्तियों की दशा अत्यंत दयनीय है। अधिकांश रूप से इन बस्तियों में निवास की अस्वास्थपूर्ण दशा है। यह दशा उनमें रहने वाले मजदूरों की असमर्थता का परिणाम मात्र है। इन बस्तियों में रहने वाले श्रमिक दरिद्रता से पीड़ित है। हमारी पंचवार्षिक योजनाओं में इन बस्तियों के निवारण के लिए पर्याप्त धनराशि रखी जाती है। जब तक समाज के प्रत्येक व्यक्ति को इन बस्तियों के संबंध में दर्द पैदा नहीं होगा तब तक इनकी दशा बहुत कम सुधर पायेगी। इन बस्तियों को दूर करने के संबध में निम्नलिखित सुझाव दिये जा रहे हैं।

१ केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार, नगर निगम, तथा अन्य सेवा भावी संस्थाएं संघटित रूप से कार्य करें।

२. श्रमदान के द्वारा विद्यार्थी भी गंदी बस्तियों में से गंदगी को हटाने का प्रयत्न करें तथा वैसे ही नई बस्तियों के निर्माण में योगदान दें।

३. समाजशास्त्री इन बस्तियों का सर्वेक्षण करें तथा गंदी बस्तियों में रहने वाले लोगों को सामाजिक शिक्षा के द्वारा शिक्षित करें। उनकी आदतों में भी हमें परिवर्तन करना होगा।

४. जब तक आस-पास नई बस्तियाँ नहीं बन जातीं, तब तक इन बस्तियों को न हटाया जाय तथा उन्हे साफ रखवाया जाय।

५. मास्टर प्लान बनाकर उसे कार्यान्वित करना।

प्रकरण का सारांश

१. गंदी बस्तियों की धारणा।
२. गंदी और घनी बस्ती निर्माण के कारण।
३. गंदी बस्तियों की ओर जाने वाले।
४. गंदी बस्तियाँ—सामाजिक विघटन।
५ नगरीयकरण तथा गंदी बस्तियाँ।
६. भारत में गंदी बस्तियाँ।
   (१) बंबई की चालें।
   (२) कलकत्ता की बस्तियाँ।
   (३) कानपुर के अहाते।
   (४) मद्रास की चेरी।
   (५) इंदौर की श्रमिक बस्तियाँ।
७. गंदी बस्तियों के निवारण के उपाय।

अध्याय ११

कस्बा और नगर आयोजन

Town & City Planning

समाज शास्त्रीय दृष्टिकोण से नगर आयोजन से तात्पर्य स्वास्थप्रद, आर्थिक, सामाजिक, एवं नैतिक परिस्थितियों का निर्माण करना ही है। नगर को इस प्रकार आयोजित किया जाय कि वह सुन्दरतम दीखे तथा समस्त सामाजिक सुविधायें प्राप्त हों। नगर आयोजना के संबध में सयुक्त गणराज्य अमेरिका में प्रमुख रूप से सर पैट्रिक गीड्स, जान० एम० बंकिगहम, कार्ल लोहमन इत्यादि विद्वानों का नाम उल्लेखनीय है। इनमे से पेट्रिक गीड्स प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने नागरिकों की आर्थिक एवं सामाजिक योजना की रूपरेखा तैयार की थी। गीड्स महोदय ने भारतवर्ष का भी दौरा किया था। इन्होंने नगर आयोजना पर एक विज्ञप्ति सन् १९२० मे इन्दौर नगर का निरीक्षण करने के उपरान्त होलकर नरेश को प्रस्तुत की थी। भारतवर्ष में नगर आयोजना का प्रारम्भ करने का श्रेय केवल गीड्स महोदय को ही है। मध्यप्रदेश का गौरवशाली नगर इन्दौर इनके सुझाव का ही परिणाम है।

नगर आयोजन कोई आसान कार्य नहीं है। भविष्य में नगर के विस्तार एवं विकास को ध्यान में रखकर ही आयोजना की रूपरेखा तैयार करनी पड़ती है। नगर का तात्पर्य जनसमूह से है। इन जनसमूह की गतिशीलता, घनत्व, मानसिक तथा मनोरंजन के साधनों का निर्माण, बालोद्यान फैक्ट्रियाँ, जनसमूह के लिये वर्ग के अनुसार निवासस्थान, श्रमिकों की बस्तियाँ, आवश्यक सुविधाएँ, स्वास्थ एवं राजमार्ग आदि का प्रबंध करना पड़ता है। सारांश में नगर की वृद्धि के साथ-साथ उसके सौंदर्य में भी वृद्धि होनी चाहिये।

जान एस बंकिगहम के नगर आयोजना पर विचार—

आपने १८४९ में "National Soils and Practical Remedies"

नामक पुस्तक में बताया है कि नगर को छोटे-छोटे उपनगरों में विभाजित करना चाहिये। फैक्ट्रियाँ तथा अन्य उपद्रवी समूहों को नगर के बाहर बसाना चाहिये।

मध्यनगर में १०,००० से अधिक जनसंख्या नहीं होनी चाहिये तथा क्षेत्रफल १ वर्गमील से अधिक नहीं होना चाहिये। इस संबंध में ब्रिटेन का उदाहरण दिया जा सकता है। जहाँ पर छोटे-छोटे नगर बने हैं।

होवर्ड (Howard) ने "Garden City" की कल्पना को ढूंढ़ कर निकाला था।

सन् १९०२ में लंडन से ३५ मील दूर एक स्थान (Lacth-Worth) को प्रथम गार्डन सिटी बनाया था। १९३१ में वेलविन नामक आदर्श नगर का निर्माण किया गया। वेलविन की जनसंख्या २१००० होकर ४३९६ मकानों में स्थिति है। मनोरंजन के स्थानों ने ६०० एकड़ भूमि घेर रखी है। वेलविन में ३६ दुकानें, एक नाट्यगृह, एक चलचित्र गृह, १२ गिरजाघर तथा २८ खेलकूद के मैदान हैं।

लौहमन के विचार—

उनके विचार से नगर आयोजना का अत्यधिक महत्व है। नगर आयोजना की रूपरेखा इस प्रकार होनी चाहिये कि नगर के विकास के साथ-साथ जनसमूह में सहयोग, क्षमता, स्वास्थ्य, उपयोगिता तथा सौंदर्य की वृद्धि हो।

आधुनिक समय में बड़े-बड़े देशों में नगर आयोजना को महत्व दिया जा रहा है। उद्योगीकरण एव नगरों के आयोजन हीन विकास ने अनेक समस्यायों को उपस्थित किया है। जैसे, शहरों में निवास स्थानो की कमी, अत्याधिक भीड़-भाड़, श्रमिकों का दैनिक दशा, दुर्घटनाएँ, अपराध एवं बाल अपराध इत्यादि। नगर आयोजना के साथ-साथ समाजशास्त्रियों को चाहिये कि वे प्रथम नगरीय परिस्थिति शास्त्र का अध्ययन करें। प्रत्येक स्थान पर भिन्न-भिन्न परिस्थितियाँ होती हैं। नगर आयोजना की रूपरेखा तैयार करने में समाजशास्त्री को इंजीनियरों, सामाजिक कार्य कर्त्ताओं एवं सरकार के सहयोग की आवश्यकता पड़ती है। कभी-कभी धन राशि के अभाव में तथा राजनैतिक दलों की नीति का नगर आयोजना पर बुरा प्रभाव पड़ता है। भारत में ऐसे कुछ नगर हैं जहाँ पर उपरोक्त तत्वों के कारण नगर आयोजना परिपूर्ण नहीं हो सकी।

नगर आयोजना की रूपरेखा—

सर्व प्रथम जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, जन समूह तथा उनके सामाजिक जीवन से आयोजनकर्ता को परिचित होना चाहिये तथा नगर

का क्षेत्रफल निर्धारित कर लेना चाहिये। इसके पश्चात् औद्योगिक क्षेत्र का चुनाव करना चाहिये। औद्योगिक क्षेत्र निम्नलिखित आधार पर चुनना चाहिये।

(१) जनगणना द्वारा परिभाषिक उद्योगिक क्षेत्र।

(२) व्यापारिक क्षेत्र जहाँ वस्तुओं का क्रय, विक्रय होता हो, वस्तुओं का एक सा मूल्य रहता हो तथा विज्ञापन की समितियाँ हों।

(३) भौगोलिक पर्यावरण अनुकूल हो।

(४) जनसमूह की दृष्टि से उपर्युक्त क्षेत्र।

(५) जल एवं विद्युत का प्रबंध।

(६) स्वास्थ्य सबंधी सेवाएँ।

(७) स्थानीय परिवहन उपलब्ध क्षेत्र।

(८) दुकानें एवं निवास स्थान की सुविधाएं।

(९) यातायात की सुविधाएं।

(१०) व्यक्तित्व विकास की संस्थाएं जैसे पाठशाला एवं महाविद्यालय, अध्ययन मंडल, कलामंडल, चलचित्र, गिरजाघर आदि।

नगर आयोजना आयोग

औद्योगिक क्षेत्र के चुनाव के पश्चात् नगर आयोजना आयोग की स्थापना करनी चाहिये। इस आयोग में शासकीय, अर्धशासकीय, गैरशासकीय सदस्य हों जो नगर के हित को महत्वपूर्ण मानते हों। बर्गेल ने ठीक ही लिखा है : "नगर से तात्पर्य जनसमूह से है। निवास स्थान एवं आयोजना आवश्यक है। परन्तु एकमेव है। यह सम्भव है कि सामाजिक आयोजना एवं भौतिक आयोजना के आधार पर तथा मान्यनियमों के आधार पर संघटित एक सुन्दर नगर का निर्माण हो जाय। फिर भी नगर एक भोपला (Empty-shell) बना रहेगा। नगर का विकास तथा अस्तित्व जनसमूहों की प्रवृत्ति एव सामाजिक मूल्यों पर निर्भर है। जनता के सहयोग के बिना योजनाएँ कदापि सफल नहीं हो सकतीं। योजना का भविष्य लोगों का व्यवहार, प्रवृत्ति, आत्मीयता एवं सहयोग पर ही निर्भर है।

इस सम्बन्ध में आगे का कार्य एक लिखित नक्शा तैयार करना है जिसमें नगर को सुशोभित एवं रम्य बनाने के सम्बन्ध में आयोजना होती है। नगर के सम्बन्ध मे तथा जनसमूहो के सम्बन्ध में अनेक आर्थिक सामाजिक तथ्यों को एकत्रित किया जाता है। इसके अलावा निम्नलिखित विषयों पर जानकारी भी एकत्रित की जाती है।

१. मूलभूत आवश्यकताएँ—

जल, विद्युत, शिक्षा का प्रबंध, स्वास्थ सेवाएँ, आरक्षा सेवाएँ, अग्नि से रक्षा इत्यादि।

२. निवास सम्बन्धी—

निजी मकान, निम्नस्तर के किराये के मकान, सरकारी भवन एवं किरायेदार के मकान इत्यादि।

३. उद्योग एवं व्यापार—

लघु, मध्य एवं विशाल उद्योग, यातायात और परिवहन, रेल यातायात, सड़क यातायात, नगर यातायात, निजी गाड़ियाँ, यातायान व्यवस्था, वाहन खड़े करने के स्थान, मनोरजन, शारीरिक मनोरंजन तथा अन्य मनोरंजन की सुविधाएँ, इस प्रकार विषयों के सम्बन्ध में तथ्यों को एकत्रित किया जाकर नगर आयोजना आयोग का अध्ययन करके आयोजना बनाते हैं। उपरोक्त बातें या विभाग एक दूसरे पर निर्भर हैं तथा उनका पारस्परिक सम्बन्ध है। इन सम्बन्धों को ध्यान में रखते हुए योजनाकारों को योजना बनानी पड़ती है।

नगर आयोजना पर प्रभाव डालने वाले कारक—

१. जनसंख्या का आवास और प्रवास—

नगर का जनसमूहों के आवास और प्रवास पर नियंत्रण नहीं होता। जिस नगर की आर्थिक स्थिति अच्छी होती है वहाँ पर बाहर से आने वाले निम्नस्तर के लोगों का आधिक्य होता है, वे अधिक मात्रा में आते हैं और गन्दी बस्तियों का निर्माण करते हैं। अत्याधिक भीड़-भाड़ के कारण उच्च वर्ग के लोग नवीन उपनगरों में रहने के लिये चले जाते हैं तथा उनके प्रथम स्थानों का मूल्य कम हो जाता है।

२. जनसंख्या में परिवर्तन—

नगर की जनसंख्या में भी वृद्धि होती रहती है। आवास से भी वृद्धि होती है।

३. राजनैतिक दलों की गुटबंदी।

४. नगर के निर्माण में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि नगर के भवन तब ही रहने योग्य होते है, जबकि वे मकान समस्त सुविधाओं से परिपूर्ण हों, यातायात का प्रबंध हो, सड़कों पर प्रकाश का प्रबंध हो, तथा नगर के महत्वपूर्ण स्थानों के पास हों।

५ विपदा का समय जैसे देश के विभाजन के पश्चात् हमारे भाई पाकिस्तान से अधिक मात्रा में आये तथा भारत के विभिन्न नगरों में बस गये ।

जनशिक्षा की आयोजना

नगर का तात्पर्य मनुष्यों से है न कि बड़े-बडे भवन, अस्पताल, रेलवे का पुल, गिरजाघर, खेल के मैदान आदि से । लोग शिक्षित न होंगे तो सुन्दर नगर को ऊबड़-खाबड बना देंगे । सामाजिक शिक्षा के द्वारा जनसमूह को शिक्षित किया जाना चाहिये । तथा उनके व्यवहार मूल्य आदि का अध्ययन कर उसमें सुधार किया जाना चाहिये ताकि वे नगर को सुन्दर बनाये रखने के लिये सहयोग प्रदान कर सकें ।

भारत में कस्बा और नगर आयोजन

पुरातन काल में २-३ हजार बर्ष पूर्व प्राचीन सभ्यता के अनुसार आयोजना पर आधारित नगर थे । उस समय राजमार्ग, मन्दिर तथा अन्य सुविधाएं तत्कालीन समाज के लिये सुयोग्य थीं । हमारे वैदिक ग्रन्थों के अध्ययन से पता चलता है कि उस समय निवास स्थान कहाँ बनवाना है उसका चुनाव कर लिया जाता था तथा प्राय: भवनों के सामने बगीचे लगवाये जाते थे । अशोक के समय का पाटलीपुत्र नगर आयोजित नगर था । ऐसा कदापि नहीं कहा जा सकता कि पुराने समय के नगरों का निर्माण योजनावद्ध नही था । परन्तु खेद का विषय है कि मध्यकाल में भारत पर अनेक आक्रमण हुए । भारतवर्ष हमेशा कुरुक्षेत्र बना रहा तथा प्राचीन भारतवर्ष की प्राचीन कला छिन्न-भिन्न होगई ।

आधुनिक समय में भारत में नगर आयोजना प्रारम्भ करने का श्रेय सर-पैट्रिक गीड्स को ही है । उन्होंने १९१५ से १९२० तक भारतवर्ष के कुछ नगरों का दौरा किया तथा अध्ययन के पश्चात् नगर आयोजना के सम्बन्ध में रिपोर्ट प्रस्तुत की । हमारे मध्य प्रदेश का गौरवशाली नगर इन्दौर इनके ही सुझाव का परिणाम है ।

आज के औद्योगीकरण के युग में विशेषत: स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् नगर आयोजना की अत्यंत आवश्यकता थी । इस सम्बन्ध में पब्लिक हेल्थ इंजीनियरिंग डिपार्टमेंट, नगर निगम तथा इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट कार्य कर रहे हैं । बहुत से नगरों में नगर आयोजना विभाग भी खुले हैं जिनका कार्य वर्तमान गंदी बस्तियाँ हटाना एवं नवीन भवनों का निर्माण करना है ।

स्वास्थ्य सर्वेक्षण एवं विकास समिति का कार्य

भारत में सन् १९४६ में एक समिति का चयन किया गया था । जिसका

नाम स्वास्थ्य सर्वेक्षण एवं विकास समिति था। उस समिति ने निम्नलिखित सुझाव दिये।

१. प्रत्येक राज्य में गृह मंत्रालय का कार्य है कि वे नगर आयोजना कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व राजकीय स्तर पर समितियों का चयन करें तथा अधिक से अधिक ध्यान नगरों के नव निर्माण की ओर दे।

२. योजना के शासन के विभिन्न विभाग जैसे कृषि, उद्योग, निगम, स्वास्थ सम्बन्धी पंचायतें एवं स्वास्थ कल्याण आदि से सहयोग मिलना चाहिये।

३. भारत के लिये एक विशेषज्ञ की नियुक्ति की जाय जो विभिन्न राज्यों को नगर तथा ग्राम योजना मे सम्पर्क बनाये रखे तथा इस विषय पर आदि नियम पारित किये जाँय।

विभिन्न राज्यों में नगर आयोजना

मद्रास, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र तथा हैदराबाद इन चार राज्यों में "नगर" तथा गांव योजना अधिनियम पारित हो चुके हैं। योजना आयोग भी सिफारिश करता है कि समस्त राज्यों में उपरोक्त अधिनियम पारित हो जाँय।

नगर आयोजना में ध्यान देने योग्य बातें

१. व्यापारिक क्षेत्र—रेलवे की सुविधायें।
२. औद्योगिक श्रमिक बस्ती का निर्माण हो।
३. निम्न, मध्यम श्रेणी एवं उच्चतर वर्ग के लिये निवास स्थान की व्यवस्था।
४. राजमार्गों पर दुकानों की व्यवस्था।
५. नगरों के बाहर से यातायात व्यवस्था।
६. अन्य श्रमिकों की बस्तियाँ।
७. विभिन्न क्षेत्रों में पाठशालाएं, खेल के मैदान एवं बालोद्यान की व्यवस्था।
८. खुली हवा के मैदान एवं नगर उद्यान तथा तरण-पुष्कर।
९. संपूर्ण नगर के लिये जल सुविधाएं।
१०. संपूर्ण नगर के लिये विद्युत सुविधाएं।
११. नगर में स्थान-स्थान पर सरकारी अस्पताल की सुविधाएं।
१२. बालवाड़ी, नर्सरी एवं बाल मनोरंजन के केन्द्र हों।
१३. चौड़ी सड़कें एवं फुटपाथ हों।

१४. नगर के मुख्य मार्ग पर वाहनों के लिये तथा पैदल यात्रियों के लिये पृथक-पृथक मार्ग हों।

१५. नगर सफाई एवं प्रौढ़ मनोरंजन की समुचित व्यवस्था हो।

नगर के आयोजना में उपरोक्त बातों पर ध्यान दिया जाय तो हमारे नगर प्रगति के पथ पर अग्रसर होंगे एवं सुन्दर दीखेंगे। आदर्श नगर से तात्पर्य भौतिक पदार्थ जैसे ईंट, पत्थर, चद्दर, लोहा आदि से नहीं है। बल्कि उस नगर के निवासियों के व्यवहार एवं प्रवृत्ति एवं सामाजिक मूल्यों पर बहुत कुछ निर्भर है।

प्रकरण का सारांश

१. नगर आयोजना का विचार––
जॉन एस० वंकिंगहम तथा लोहमन के विचार।
२. नगर आयोजना की रूपरेखा।
३. नगर आयोजना आयोग।
४. नगर आयोजना पर प्रभाव डालने वाले कारक।
५. जन शिक्षा की आयोजना।
६. भारत में कस्बा और नगर आयोजन।
७. स्वास्थ सर्वेक्षण और विकास समिति के कार्य।
८. विभिन्न राज्यों में नगर आयोजना।
९. नगर आयोजना में ध्यान देने योग्य बातें।

SELECTED BIBLIOGRAPHY

1. Abraham, C. M.	नागरिक समाजशास्त्र
2. Bergel, E. E.	Urban Sociology.
3. Bierstedt, R.	Social Order.
4. Barns & Teeters	New Horizons in Criminology.
5. Baber, R. E.	Marriage & the Family.
6. Desai, A. R.	Rural Sociology in India.
7. Davis, Kingsley	Human Society.
8. Darrow, C.	Crime–Its Causes and Punishment.
9. Ellitt & Merrill	Social Disorganization.
10. Geddes, P.	Town Planning–City Development, Vol. 1 & 2.
11. Haikerwal	Economic and Social Aspects of Crime in India.
12. Healy & Browner	Delinquents and Criminals, Their Making and Unmaking.
13. Khare, P. N.	Socio-Economic Analysis of Families of Children Attending Montessori Schools (unpublished thesis)
14. Khare, P. N.	"ग्रामीण समाजशास्त्र"
15. Lynd, R. S. & Lynd, H. M.	The Middle Town.
16. ,, ,,	The Middle Town in Transition.
17. Ogburn & Nimkoff.	A hand Book of Sociology.
18. Sorokin & Zimmerman	Principles of Rural-Urban Sociology.
19. Sethna, M. J.	Society & the Criminals.
20. Sutherland, E. H.	Principles of Criminology.
21. White, W. A.	Crime & Criminals.

22. "Encyclopaedia of Social Sciences.

23. "Southern Asia Social Science Bibliography (Unesco) No. 8. 1959."

SELECTED ARTICLES

24. Abraham, C. M. — **Police ni a welfare. state.** (Indian Sociologist) Feb., 1960

25. Khare, P. N. — **Slum dwellers of Labherpura.** (Cyclostyled Report, Dec. 1960)

26. Khare, P. N. — **Indian Women—Their Role in Planning.** (Social welfare) May, 1960.

27. Khare, P. N. — **"Economic Independance of Women"** (Indian Sociologist) March, 1961

28. Pothan, K. P. — **Industrialization and Urbanization** (Indian Sociologist), March 1961.

29. Senger, M. S. — **भारत में वेश्यावृत्ति** (Sarita), August, 1959.